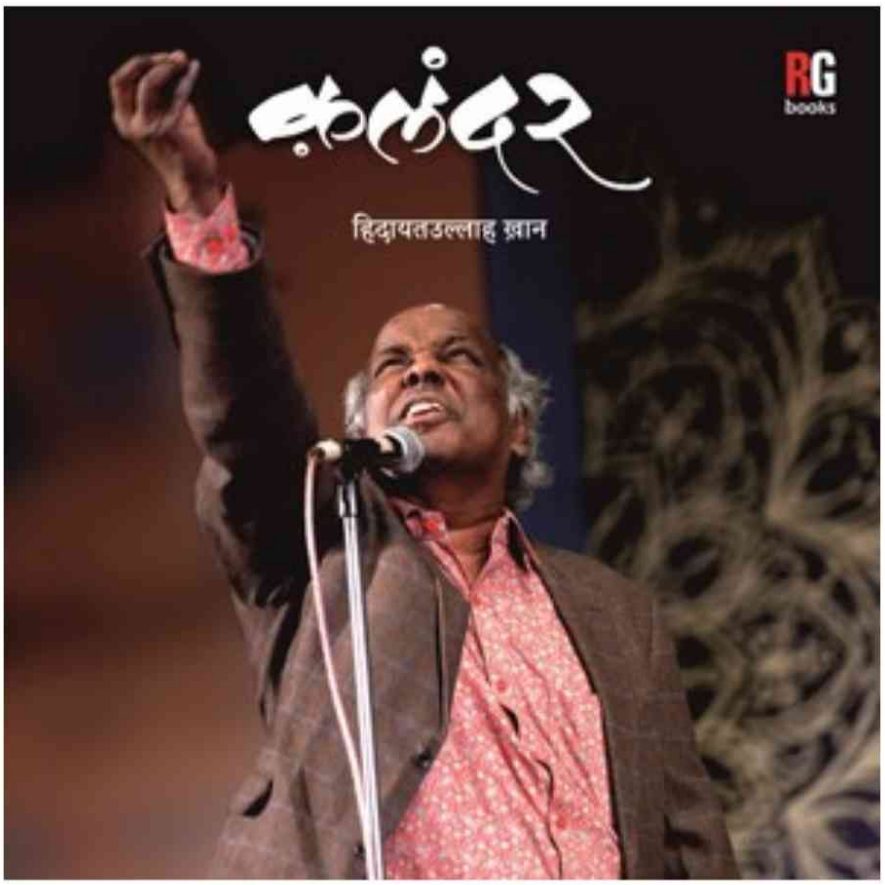

फ़क़ंदर
RG
books
हिदायतउल्लाह ख़ान

वाक़िआत जो कहानी बन गए
हिदायतउल्लाह ख़ान

रेडग्रैब बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
942, मुठ्ठीगंज, प्रयागराज-3 उत्तर प्रदेश, भारत
वेबसाइट - www.redgrabbooks.com
ईमेल - contact@redgrabbooks.com

सर्वाधिकार सुरक्षित : रेडग्रैब बुक्स प्राइवेट लिमिटेड 2019
कवर फोटो : तनवीर अहमद ख़ान
आवरण व टाइप सेटिंग : रेडग्रैब बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, प्रयागराज

लेखक इस पुस्तक के मौलिक लेखन के नैतिक अधिकार का दावा करता है

यह पुस्तक या इसका कोई भी भाग प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना पूर्ण या आंशिक रूप से इलेक्ट्रानिक अथवा यांत्रिक (जिसमें फिल्म/सीरियल/फोटोग्राफिक रिकार्डिंग/ पीडीएफ फारमेट भी सम्मिलित है) अभिलेखन विधि से या सूचना संग्रह तथा पुन: प्राप्त पद्धति (रिट्रीबल) अथवा अन्य किसी भी प्रकार से पुन: प्रकाशित, अनूदित या संचारित नहीं किया जा सकता।

क़लंदर के हुज़ूर में!
हिदायतउल्लाह ख़ान



राहत इंदौरी पर लिखने में इत्मिनान रहता है। तारीफ़ कभी चापलूसी तक नहीं जाती, क्योंकि कितना ही लिख दिया जाए, कम रहता है; कैसे ही ल़फ्ज़ इस्तेमाल कर लिए जाएँ, छोटे पड़ जाते हैं। उनके बारे में मुरीद बनकर लिखें, हमवतन की हैसियत से लिखें, अदबी ख़ादिम या सहाफ़ी बनकर लिख लीजिए, नतीजा सिर्फ़ यही है- "क़लंदर कैसा होता है, राहत इंदौरी जैसा होता है।"

क़लंदर की मुसव्विर कोई तस्वीर नहीं बना पाया है, पर अगर वहाँ राहत इंदौरी का चेहरा बना दिया जाए तो क़लंदरी का हक़ पूरा हो जाता है। लेकिन क्या सिर्फ़ तस्वीर से 'क़लंदर' तय किये जा सकते हैं? ज़रूरी था कि राहत इंदौरी की ज़िंदगी के वरक़ पलटे जाएँ; जाना जाए कि इस फ़नकार के यहाँ क़लंदरी का नुज़ूल कैसे हुआ। जानना था कि आम ख़ानदान में पैदा होने वाला, आम शक़्ल सूरत का बंदा आख़िर दुनिया को कैसे 'राहत' पहुँचा रहा है। जब राहत इंदौरी की ज़िन्दगी में ताक-झाँक की, हर हिस्से में क़लंदर दिखायी दिया।

मुशायरे का शायर है, अपनों के लिए सब कुछ क़ुर्बान करने वाला वफ़ादार दोस्त है, औलाद को हौसला देता बाप है, फ़रमाबरदार बेटा है, जो माँ के कहने पर बिना किसी सवाल के घर छोड़ देता है, वो भाई है जो अपना लिबास छोटे भाई के नाम कर देता है; वो शौहर है, जो शरीक़-ए-हयात के लिए मीठा समंदर है, वो फ़नकार है, जो ईनाम, इकराम, एज़ाज़ और तमग़ों के लिए कहीं सर नहीं झुकाता है। उसमें इंसानियत के लिए दर्द है। वो चश्मा भी है, जो इंसान को सिर्फ़ इंसान के नज़रिये से देखता है। जिसके पास सियासी समझ है, जो इंसान की रहनुमाई के लिए राय रखता है। राहत इंदौरी नाना-दादा बन चुके हैं, पर उनके अन्दर का बच्चा कभी भी मचल जाता है, उनकी ग़ज़ल पर सवार हो जाता है। किताबों के पिंजरे तोड़ने लगता है। वो नौजवान भी है, जो वक़्त की हर

बुराई के सामने सीना खोलकर खड़ा हो जाता है और लफ़्ज़ों के असलाह से हमले करता है; वो बुज़ुर्ग है जो रिवायतों की सफ़ें चीरकर आगे तो निकल आया पर उसे अपने अदबी असासे की फ़िक्र है। उसकी पेशानी पर उर्दू की बदहाली को पढ़ा जा सकता है। जब वो कैनवास पर नये मुशायरों की तस्वीर बनाता है, सिर्फ़ ख़ुद ही नहीं रोता, रंग भी तरबतर हो जाते हैं। सबके बाद ज़रूरी था क़िताब का नाम 'क़लंदर' रखा जाए और 'क़लंदर' हाज़िर है।

राहत इंदौरी की पूरी ज़िंदगी तो यहाँ नहीं है, लेकिन वो हिस्सा ज़रूर है, जो उनसे मोहब्बत करने पर मजबूर कर देता है। मतलब क़तई नहीं, जो रह गया है उसमें उजाला नहीं है। राहत इंदौरी की ज़िंदगी के पन्नों पर बहुत कुछ ऐसा मिलता है, जो 'संस्कारवान' समाज को पसंद नहीं आएगा पर उससे उनकी शायराना शिनाख़्त में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है। मुनव्वर राना कहते हैं- "अच्छे शायर में ख़ूबियों के साथ ख़राबियाँ भी होना चाहिए, वरना वो शायर कहाँ रह जाएग फ़रिश्ता हो जाएगा और फ़रिश्तों को अल्लाह ने शायरी के ईनाम से महरूम रखा है।"

वैसे राहत इंदौरी ने कभी फ़रिश्ता बनने की कोशिश नहीं की, क्योंकि उन्हें पता है, इंसान बनना ज़्यादा मुश्किल है फ़नकार बनकर इंसान रहना और भी मुश्किल। हालाँकि राहत इंदौरी के लिए मुश्किल कुछ भी नहीं है। उनकी ख़ूबी है, मुश्किल से मुश्किल बात आसानी से कह देते हैं। उनकी शायरी सिर्फ मेहबूबा से बात करने का ज़रिया नहीं है नारा है जो सीधे असर करता है। कभी वो आशिक़ हो जाते हैं, कभी मज़लूमों के मसीहा दिखने लगते हैं, कभी सियासत का गिरेबाँ पकड़ लेते हैं, कभी दाढ़ी और जनेऊ से मुक़ाबला करने निकल पड़ते हैं। यही है जो उनके क़रीब लाया और उनके मुरीदों की क़तार में बिठा दिया। अगर शायरी से मुहब्बत की वजह मुनव्वर राना हैं, तो उसकी इज़्ज़त का ज़रिया राहत इंदौरी बने हैं। जिस मुहल्ले में हम रहे हैं, राहत साहब भी वहीं रहा करते थे। तब नाचीज़ में न शायरी की समझ थी, न ही शायर के मर्तबे से वाक़िफ़ था। जब समझने लगे तो वो तस्वीर सामने थी या बना दी गयी थी, जिसमें राहत साहब क़लंदर तो हरगिज़ नहीं थे, पर बुज़ुर्गों से सुना था, जब तक किसी को आज़मा न लो, सोहबत न अपना लो, राय नहीं बनाना चाहिए और राहत इंदौरी का शेर भी यही कह रहा था-

ज़रूर वो मेरे बारे में राय दे लेकिन
ये पूछ लेना कभी मुझसे वो मिला भी हैं

मुलाक़ात का सिलसिला भी मुशायरे की वजह से ही वजूद में आया और कहने की इजाज़त चाहिए... बिना राहत इंदौरी के कभी मुशायरा नहीं किया और उन्होंने भी कभी मोल-भाव नहीं किया, कभी इंकार नहीं किया और कोई बहाना भी सामने नहीं रखा। इधर से सदा गयी... उधर से लब्बैक आया...।

तुमको राहत की तबीअत का नहीं अंदाज़ा

यही हौसला था जिसने 'क़लंदर' को काग़ज़ पर उतारने में मदद की। काम आसान नहीं था, पर जब म़ज्बूत साथ हो तो आसान हो जाता है। पहली बार इसका ज़िक्र 'रविवार पत्रिका' के डायरेक्टर डॉ. सुभाष खंडेलवाल जी से किया। उनके पास हमेशा की तरह हाँ थी, पर इसमें राहत इंदौरी से मुहब्बत भी शामिल थी। अगर रोहन शर्मा जी का ज़िक्र न किया जाए तो बात पूरी नहीं होगी। जब भी इस सिलसिले में राहत साहब से मिलने गये, वो साथ रहे, मशवरों से रहनुमाई की। इक़बाल अब्बासी का साथ भी रहा है, जिसने आसानी पैदा की। इसके अलावा जिनका भी साथ मिला, सबके हुज़ूर में शुक्रिया... और उम्मीद है 'क़लंदर' से मुलाक़ात यादगार रहेगी।

1. आपा बी ने दिलाया पहला मुशायरा
2. क़ुरैशी कहाँ से आया, नहीं पता
3. राहत हमराह सीमा
4. अम्मी की बेटी हूँ
5. मेरे ससुर की वजह से मैं हूँ
6. मेरा कहा मेरे भाई के लिए सनद है
7. जो ज़हर पिये मेरा जा-नशीन है
8. कोई पूछे तो कहना पापा प्रोफ़ेसर हैं
9. तस्वीर बनी और बोलने लगी
10. राहत के रंग का गवाह हूँ
11. बज़्म-ए-अदब से मिली आवाज़
12. जो तुम कहोगे तुम्हारा होगा
13. नूर इंदौरी ने किया लाँच
14. मेरी दिल्ली मेरा रानीपुरा है
15. आर-पार के अदबी अखाड़े
16. आँखों ने कभी मील का पत्थर नहीं देखा
17. तेरी बर्बादी का ज़िक्र है
18. दोस्तों के दोस्त
19. सलाr का हो तो हर बात सुनी जाती है
20. सीन और शीन में उलझी उर्दू
21. इंदौर के राहत साहब
22. तू आज भी जवान है बम्बई
23. जो फ़ैसला होगा यहीं पे होगा
24. पैसा बाँटने के लिए होता है
25. अनवर जलालपुरी ने कराया एम.ए.
26. मुनव्वर में वो सारी ख़ूबियाँ हैं, जो...
27. मुझे हाली नहीं मिला
28. ऐसी शहनाई बजाते हैं बनारस वाले
29. क़र्फ्यू में मुशायरा
30. परिन्दे अपनी बोलियाँ बोलकर उड़ जायेंगे
31. क़लंदर इन्कार भी कर सकता है
32. दो गज़ ज़मीन भी न मिली
33. कलाम
34. दिलीप कुमार के सिरहाने 'राहत'
35. पाँचवाँ दरवेश
36. इंदौर से लाहौर तक रिसर्च
37. दवा भी साथ चलती है
38. सियासत बिगाड़ देती है
39. स्टेज कोई भी हो सरदार वही हैं
40. आमिर ख़ान की रातों को 'राहत'
41. दोस्तों की भी राय ली जाये

आपा बी ने दिलाया पहला मुशायरा

जिसकी सिफ़ारिश माँ कर दे, उसे किसी और की ज़रूरत नहीं



मक़्बूल बी : राहत साहब की अम्मी

राहत इन्दौरी ने रिश्तों को सिर्फ़ निभाया ही नहीं, जिया है, इ़ज्ज़त की है, उसका हक़ दिया है। रिश्तों की क़द्र करना उन्होंने अपनी माँ से सीखा था, जिनसे बेपनाह मुहब्बत करते थे। अब माँ नहीं हैं, लेकिन उनकी आँखों में देखी जा सकती हैं। माँ का ज़िक्र आते ही उनके चेहरे पर वही सब दिखता है, जो गोद के बच्चे में देखा जाता है। उनके लिए माँ ऐसी रहबर थी, जिसने सिर्फ उँगली पकड़कर चलना ही नहीं सिखाया ज़िन्दगी कैसे जीना है और उसके लिए क्या तैयारी होना चाहिए, सब उन्हीं का दिया हुआ था, जो राहत इंदौरी के आज भी काम आ रहा है। उन्होंने कभी अपनी माँ से मोहब्बत का इज़हार नहीं किया। हालाँकि वो उनके साथ हैं, पर शायरी में नहीं हैं। जबकि माँ पर ख़ूब शेर कहे जा रहे हैं। इस दौर का शायद ही कोई शायर हो, जिसने माँ को ग़ज़ल में जगह न दी हो। अलग-अलग अंदाज़ में माँ दिखायी दे रही है। कभी सुनने को मिलती है, तो कभी पढ़ने को। दाद दिलाती है, शोहरत की वजह बनती है। स्टेंडिंग ओवेशन भी दिला देती है। माँ के ज़रिये सुनने वालों को ज़ज्बाती किया जा सकता है, उनकी आँखें तर की जा सकती हैं और वफ़ादार बेटे का किरदार निभाया जा सकता है। बहस होती रही है, क्या शायरी में माँ का इस्तेमाल होना चाहिए? अलग-अलग दलीलें आयी हैं, पर अभी तो माँ... शायरी की माँ... बनी हुई है और दाद का सबसे आसान तरीक़ा भी। अब्बास ताबिश का शेर है-

एक मुद्दत से मेरी माँ नहीं सोई 'ताबिश'
मैंने इक बार कहा था मुझे डर लगता है

मुनव्वर राना को तो 'माँ' का बेटा ही कहा जाता है और उन्होंने ही माँ को ग़ज़ल में शामिल किया है, ख़ूब शेर कहे हैं। कह सकते हैं, उनके बाद शायरों में माँ पर शेर कहने की होड़ लग गयी है और सब अपनी-अपनी माँ को लेकर निकल पड़े हैं। पर जिस अंदाज़ में मुनव्वर राना ने माँ को इ़ज्ज़त दी है, वो कहीं ओर मिलती नहीं है–

मामूली इक क़लम से कहाँ तक घसीट लाए
हम इस ग़ज़ल को कोठे से माँ तक घसीट लाए

मुसीबत के दिनों में हमेशा साथ रहती है
पयंबर क्या परेशानी में उम्मत छोड़ सकता है

राहत इन्दौरी के पास जो भी शोहरत हैं, उसमें माँ की दुआएँ शामिल हैं, पर वो ग़ज़ल में आकर मदद नहीं कर रही हैं, न ही आगे कभी करते दिखायी देंगी। इस पर उनका रुख़ साफ़ है, वो माँ से मोहब्बत करते हैं, उसका मुज़ाहिरा नहीं करते। सिर्फ़ माँ ही नहीं, रिश्ते-नातों की शायरी से दूर ही रहे हैं, जबकि आसपास रिश्तों का हिसार है। माँ उनके लिए इबादत है, मोहब्बत है और वो कहते हैं- "माँ से मुझे उतनी ही मोहब्बत थी, जितनी बेटे को होती है शायद मैं आम बेटा नहीं था, इसलिए वो मेरी ज़्यादा फ़िक्र करती थीं और जब उन्हें पता चला मैं शायरी करने लगा हूँ तो उनकी फ़िक्र में इज़ाफ़ा हो गया था।

उनके ऩज्दीक शायरी इ़ज्ज़त नहीं थी। इसे बेरोज़गारों की ज़हनी अय्याशी समझती थीं और उस दौर में उनकी सोच पर सवाल नहीं लगाये जा सकते थे। तब शायरों को बेकार-नाकारा ही समझा जाता था। उनका मक़सद था बेटा पढ़-लिख जाए, अच्छी नौकरी मिल जाए। पर जो शायरी से लग जाते हैं वो कहीं और कहाँ लग पाते हैं। उनके सारे एहतजाज के बावजूद मैंने शायरी जारी रखी। उनके सामने ही अच्छा-ख़ासा शायर बन गया था, मुशायरों में जाने लगा था। जब मुशायरे के बुलावे आते तो माँ सारे ख़त मुझसे सिर्फ़ छुपाती ही नहीं थीं, जला देती थीं, फाड़ देती थीं; लेकिन बेपनाह मोहब्बत करती थीं। जब कोई उनके सामने मेरी तारीफ़ करता, ख़ुश होतीं और फिर शायरी उनके ऩज्दीक इ़ज्ज़त हासिल करने में कामयाब हो गयी थी। माँ कभी मेरी ग़ज़ल में मौजूद नहीं रहीं इसलिए उसमें दिखती नहीं हैं और मुझे नहीं मंज़ूर, मैं उसे दाद का ज़रिया बनाऊँ और न ही कभी बनाऊँगा। आज माँ पर शायरी फ़ैशन हो गया है। मुझे लगता है माँ-बेटे का रिश्ता ख़ास होता है और उसे आम नहीं किया जा सकता।

मेरे साथ शायरी के आग़ाज़ से मेरी माँ खड़ी हैं। पहले मुशायरे के लिए मैंने उन्हीं से सिफ़ारिश करायी थी और जिसकी सिफ़ारिश माँ कर दें, उसे फिर किसी और की ज़रूरत नहीं रहती। माँ की सिफ़ारिश का ऐसा असर हुआ कि फिर कभी कोई सिफ़ारिश नहीं हुई। बात इंदौर के क़रीब देवास की है, जहाँ कुल हिन्द मुशायरा था। बड़े-बड़े शायर आ रहे

थे। कनवीनर मेरे सगे मामूँ थे अब्दुल हकीम हनफ़ी, जो देवास नगर निगम में थे और मुशायरा नगर निगम का ही था। शायद अभी भी वो मुशायरा होता है। माँ से मैंने कहा अगर आप कह देंगी तो मुशायरा मिल जाएगा; आपके भाई हैं, बात टालेंगे नहीं। मुझे पता था माँ शायरी पसंद नहीं करती हैं, पर मैं जानता था, मुझे पसंद करती हैं, चाहती हैं। मैं उनकी कमज़ोरी हूँ और मेरे लिए कुछ भी कर सकती हैं। उन्होंने सिफ़ारिश की और वो यही कर सकती थीं क्योंकि शायरी तो मुझे सुनाना थी।

उनकी सिफ़ारिश कामयाब रही, मुझे मुशायरा मिल गया। हिन्दी में लिखा हुआ दावतनामा आया, जिसमें फ़ना निज़ामी कानपुरी, कैफ़ भोपाली, बेकल उत्साही, वसीम बरेलवी, आलम फ़तेहपुरी के नाम थे। मेरे लिए ख़्वाब के सच हो जाने जैसा था। पढ़ने पहुँच गया। निज़ामत काशिफ़ इन्दौरी कर रहे थे। उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा- लीजिए हज़रात... जनाब-ए-राहत को सुनिए। उसके बाद कभी किसी ने मेरा इतना मुख़्तसर ताअर्रुफ़ नहीं कराया। घबराहट थी, पैर हिल रहे थे, माइक डरा रहा था और मैंने शेर सुनाया। सन्नाटा था... सिर्फ़ कैफ़ भोपाली ने दाद दी। दूसरा मिसरा सुनाया, तो कैफ़ भोपाली की ही आवाज़ मेरे कान से टकरायी- चलो आओ बैठ जाओ...

बस करो। ऐसी आवाज़ थी जो आसानी से मैं भूल नहीं सकता था, पर इस



रिफ़्अतउल्लाह कुरैशी : राहत साहब के अब्बा

आवाज़ से मैंने कह दिया था, फिर कभी नहीं सुनूँगा और ऐसा ही हुआ। अल्लाह ने इस तरह के जुमलों को मुझ पर हराम कर दिया। हालाँकि बाद में कैफ़ भोपाली से अच्छी दोस्ती रही... उनके मैंने जूते उठाये हैं, उनकी सोहबत में रहा हूँ, ख़ूब दुआएँ ली हैं और उसी का असर है उर्दू की कुछ ख़िदमत करने में कामयाब रहा हूँ। ख़ैर, तीस रुपये में मुझे मुशायरा

मिला था। मैं चार-छह दोस्तों के साथ देवास पहुँचा था। दोस्तों से कह दिया था जैसे ही मैं पढ़ने आऊँ, फ़ोटोग्राफर को तैयार रखना। पर वो तैयारी करते, कैमरा खुलता उससे पहले मैं वापस हो चुका था... पर माँ मुझे लांच कर चुकी थीं। उस मुशायरे के बारे में उन्होंने मुझसे कुछ नहीं पूछा क्योंकि उन तक ख़बर आ गयी थी और वो मुझे परेशान करना नहीं चाहती थीं। उसके लिए मैंने शेर कहा-

माँ के क़दमों के निशाँ हैं कि दिये रौशन हैं
ग़ौर से देख यहीं पर कहीं जन्नत होगी

उनके जाने के बाद कोई शेर नहीं कहा और न ही कहने का इरादा है। अगर शेर कहता तो मरसिया होता। माँ पर जो मैंने शेर कहा उस पर ख़ूब शेर कहे गये हैं। बरसों उसकी नक़ल हुई, इसके बावजूद मैंने माँ पर शेर नहीं कहे, क्योंकि मेरा रुख़ साफ़ है... मैं माँ का इस्तेमाल ग़ज़ल में नहीं कर सकता। माँ तो ऐसा ल़फ्ज़ है जो किसी डाकू या मुजरिम के सामने ले लिया जाए तो वो रोने लग जाए और ऐसे आँसू मैंने देखे हैं।



हशमतुल्लाह कुरैशी साहब अपनी शरीके-हयात और पोते-पोतियों के साथ

क़ुरैशी कहां से आया, नहीं पता

'हिन्दी-उर्दू-अँग्रेजी में मेरे वालिद कमाल लिखते थे'



दोस्तों के साथ 'राहत'

राहत इंदौरी का देवास से रिश्ता रहा है, वहीं क़रीब से उनका खानदान है। उनके वालिद रिफ़तउल्लाह ख़ान भी उधर से आये थे, फिर इंदौर के होकर रह गये। पढ़े-लिखे थे। हिंदी, उर्दू और अँग्रेजी पर उनकी पकड़ थी, बा-कमाल लिखते थे। उनका लिखा आज भी राहत इंदौरी के पास है। दादा हशमतउल्लाह ख़ान के छोटे भाई हफ़ीज़ क़ुरैशी जाने-माने वकील थे, पर उनके आगे 'क़ुरैशी' कहाँ से आ गया, इसकी जानकारी राहत इंदौरी को नहीं है, पर उन्हें इतना पता है ह़फ़ीज क़ुरैशी की वजह से ही उनके आगे क़ुरैशी लगा है। उनके दादा का बड़ा नाम था। मकान बनाया करते थे, लेकिन छोटे भाई और बेटे को तालीम दिलायी थी, बावजूद इसके क़ुरैशी वैâसे जुड़ा उनको मालूम नहीं है। कहते हैं- "ऐसा वैâसे हुआ, मुझे नहीं पता। छोटे दादा ह़फ़ीज क़ुरैशी की वजह से ही हम सब क़ुरैशी हुए हैं, लेकिन क़ुरैशी होने के दिलचस्प किस्से हैं... बच्चों के कई क़ुरैशी खानदान से रिश्ते आ गये थे। सब चाहते थे हमारे ख़ानदान में शादी हो। जब अमिताभ बच्चन ने 'कौन बनेगा करोड़पति' में कह दिया कि नाम राहत क़ुरैशी है, पर लिखते राहत इंदौरी हैं। बस क्या था, जयपुर से मिलने वाले का फोन था, वो बता रहे थे, यहाँ क़ुरैशी बिरादरी का जलसा है, आपको बुलाना चाहते हैं। मैं समझा नहीं, फिर उन्होंने बताया कि अभी पता चला है आप क़ुरैशी हैं। अमिताभ बच्चन ने बताया है, बस इसलिए बिरादरी आपका सम्मान करना चाहती है। मेरे वालिद सीधे-सादे आदमी थे, अ़फसाने उन्होंने लिखे हैं और कुछ मेरे पास हैं। हिन्दी-उर्दू-अँग्रेजी में उनकी लिखावट लाजवाब थी, जिसके नमूने आज भी मौजूद हैं। कारोबार उन्होंने किया, पर कुछ ख़ास दिलचस्पी नहीं थी। इंदौर की कल्याणमल मिल में थे। हमारे घर में उर्दू के सारे रिसाले आते थे, सिर्पâ शायरी के नहीं। जो संजीदा थे, मआशरे और सियासत पर निकलते थे,

वो भी बचपन में पढ़ने को मिले हैं। घर में लिखने-पढ़ने का माहौल था जो अब नहीं है। जितनी किताबें हमने पढ़ी हैं या वालिद ने लाकर दी हैं, वो अब मुझे दिखती नहीं हैं। अब तो हमें जेठालाल उठाते हैं। कुछ लोग अ़जान से उठते हैं, कुछ को मुर्गा उठाता है, पर हमारे यहाँ ये काम जेठालाल करते हैं। क्योंकि मेरे पोते तारक मेहता का उलटा चश्मा देखते हैं और सुबह से टीवी खोल लेते हैं। अब माहौल बदल गया है। मेरे वालिद ने कभी शायरी का कहा नहीं, रोका भी नहीं। इत्मिनान वाले आदमी थे, रोक-टोक करते नहीं थे। मुझे नहीं पता कभी उन्होंने मेरा मुशायरा भी सुना है। हाँ, जब वैâसेट आ गये थे, तब ज़रूर सुन लेते थे। वो हयात थे और मैं पूरे मुल्क में पढ़ चुका था। कुछ नाम भी हो गया था। ख़ुश होते थे, पर उनकी ज़िन्दगी में म़जहब बहुत था। तहज्जुद ग़ुजार थे। उनकी बरकते हैं जो सब कुछ है।

राहत हमराह सीमा
'मेरा मकान अगर घर है तो वजह बेगम हैं'



अपनी शरीके-हयात सीमा जी के साथ तब

हर कामयाब आदमी के पीछे औरत होती है और राहत इन्दौरी के पीछे भी हैं। शुरूआती ज़िन्दगी में उनके साथ उनकी माँ खड़ी दिखायी देती हैं और ज़िन्दगी के ताक़तवर हिस्से की लगाम उनकी बीवी के हाथ में है, अगर ऐसा कहा जाए तो ज़्यादती नहीं होगी। फ़िलहाल वो राहत इंदौरी की देखभाल माँ की तरह ही कर रही हैं। जो राहत इन्दौरी को क़रीब से जानते हैं, कहते हैं... अगर सीमा क़ुरैशी ने राहत इन्दौरी को सँभाला नहीं होता तो जो घर आज ख़ुशी से चहक रहा है, वीरान भी हो सकता था। शायर होना अगर आसान नहीं है तो शायर रहकर ज़िन्दगी गुज़ारना भी आसान नहीं है। राहत इन्दौरी की ज़िन्दगी ने कई करवटें ली हैं और इसमें कुछ करवटें ऐसी हैं, जो ज़िन्दगी का रुख़ बदल सकती थीं।

कुछ वक़्त के लिए बहुत कुछ बदल गया था। राहत इंदौरी ने घर की सरहद लाँघ दी थी, कहीं और वक़्त गुज़रने लगा था। जिस घर में बीवी, दो बेटे और बेटी थीं, उसके अलावा भी घर हो गया था। सीमा राहत के लिए मामूली ख़बर नहीं थी और उनके सब्र का इम्तेहान था। उनकी शख़्सियत निखरने का दौर था और जिस ख़ानदान से राहत इन्दौरी के घर तक पहुँची थीं, उसकी तरबीयत का इम्तिहान भी था। आज़माइश कड़ी थी, बच्चे छोटे थे, हालात लगातार बिगड़ रहे थे पर उन्हें पता था, आँधी है, गुज़र जाएगी। अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकड़ना असर कर गया। डगमगा रहे राहत इन्दौरी आख़िरकार जहाज़ के परिंदे साबित हुए... जो उड़े, पर फिर सीमा के उसी जहाज़ पर आकर बसेरा कर लिया, जहाँ दो बेटे और एक बेटी मौजूद थी। राहत इन्दौरी अब उम्र के उस दौर से गुज़र रहे हैं, जब कमर झुक जाती है जेब से सिगरेट नहीं, दवा निकलती है... वो वक़्त है, जब अपने सबसे अच्छे साथी की ज़रूरत रहती है। वही अच्छा साथी असा बनकर राहत इंदौरी के साथ खड़ा है और उनको कहना पड़ रहा है- "मेरा मकान अगर घर है... तो वजह सीमा है।" राहत इंदौरी का मज़हब से कुछ ख़ास रिश्ता रहा नहीं है, पर सीमा

राहत की ज़िन्दगी में मज़हब अहम् है। अल्लाह की इबादत का कोई मौक़ा उन्होंने छोड़ा नहीं है और मुनव्वर राना कहते हैं- "अगर राहत का घर बसा हुआ है और बच्चे कुछ कर रहे हैं तो उनकी अहलिया ही इसकी वजह हैं।" साथ ही कहते हैं- "शायरों की बीवियाँ आम औरतों के मुक़ाबले ज़्यादा दीनदार होती हैं, क्योंकि उन्हें अपने शौहर के हिस्से की इबादत भी करना होती है।" कह सकते हैं, राहत इंदौरी के हिस्से की इबादत भी सीमा राहत कर रही हैं।



अपनी शरीके-हयात सीमा जी के साथ अब

राहत इन्दौरी की जब शादी हुई, क़ुरैशी से इन्दौरी हो चुके थे। वो दौर था जब किसी शायर को लड़की मिलना आसान नहीं था इससे राहत इन्दौरी को भी लड़ना पड़ा। आख़िरकार सीमा क़ुरैशी उनकी शरीक-ए-हयात बनीं, जिन्हें मेहँदी लगे हाथों में सुनना पड़ा- शायर की बीवी हो, गुज़ारा हो जाता है? कभी चेहरे पर शिकन नहीं आयी। उन्हें पता था, जिसके साथ हमेशा के रिश्ते में बँधी हैं, वहाँ मोहब्बत है, गुज़ारा आसानी से किया जा सकता है। वो सारे अंदेशे ग़लत साबित हुए। राहत इन्दौरी ने इ़ज्ज़त, वक़ार के साथ पैसा कमाया।

राहत इन्दौरी कहते हैं- "मेरी ज़िन्दगी में सीमा ख़ास हैं, क्योंकि शायर होने का मतलब है रात को जागना, दिन में सफ़र करना, मुसाफ़िर की तरह कभी-कभार घर आ जाना। मैं जब बच्चों की तरफ़ देखता हूँ तो सीमा की इ़ज्ज़त बढ़ जाती है। जहाँ भी वो हैं, उसमें उसी की परवरिश है; हम तो बस मुसाफ़िर हैं, जिन्हें नहीं पता था बच्चे कौन-से स्कूल में पढ़ रहे हैं। मुझे कहना है कि मेरे बच्चों की माँ-बाप सीमा ही है।

शादी करना आसान नहीं था, क्योंकि शायर होना काम नहीं माना जाता था। बताते, शायरी करता है तो जवाब आता, काम क्या करता है? दुश्वारी थी, ख़ानदान में ही सवाल खड़े हो गये थे... पर शादी हो गयी। अब इसे आप मेरा मुक़द्दर कह लीजिए या मेरी बेगम का, लेकिन बातें तो बनीं। जब शादी के बाद सीमा अपनी सहेली से मिलीं तो उसने उसकी

सास से मिलाया... कहा- शायर राहत इन्दौरी की बीवी हैं। ख़ातून ने पूछ लिया- क्या शायर के साथ गुज़ारा हो जाता है? जब मैं राहत इन्दौरी बना, सबको राहत है, सब मुतमईन हैं... बीवी, बच्चे, ख़ानदान, दोस्त एहबाब, मेरा शहर और मैं भी।''

कभी दिमाग़, कभी दिल, कभी नज़र में रहो
ये सब तुम्हारे ही घर हैं किसी भी घर में रहो

राहत इन्दौरी के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने सफ़र में उतनी दूरी तय कर ही ली है जितनी ज़मीन से चाँद की है। इस दूरी को तय करने में वो घर से दूर ही रहे हैं और इसे उनके चेहरे पर पढ़ा जा सकता है, क्योंकि राहत क़ुरैशी से राहत इन्दौरी बनना आसान नहीं था। इसमें मीलों का सफ़र शामिल है। इस सफ़र में यक़ीनन घर छूटा है। राहत इन्दौरी कहते हैं- ''जिस तरह से हमारी परवरिश हमारी माँ ने की थी, वैसे ही मेरे बच्चों की परवरिश मेरी बीवी ने की है अगर वो आज किसी



जब राहत साहब दुल्हा बने

क़ाबिल हैं, वजह वही हैं। सबकी शादियाँ हो गयी हैं, सब ख़ुश हैं और इसके पीछे उन्हीं की तरबीयत है। जब मैं राहत क़ुरैशी था तब मेरे बच्चे नहीं थे, माँ-बाप थे तीस रूपये महीने का झोपड़ा था। लेकिन राहत इन्दौरी बनने के बाद आज सब कुछ है और ये सारी राहत शायरी से आयी है इस राहत में घर की 'राहत' भी शामिल है।''

राहत इंदौराr ने ख़ूब पैसा कमाया और उड़ाया भी ख़ूब। जिन्होंने उनके साथ वक़्त गुज़ारा है, कहते हैं- ''दोनों हाथ से दौलत लुटायी है कभी उसका पीछा नहीं किया और लम्बे अरसे तक इससे बेपरवाह रहे कि घर की ज़िम्मेदारियों को भी कोई मज़बूत शक्ल देना है।'' तब भी सीमा राहत ने कोई शिकायत नहीं की और सब कुछ वक़्त के हवाले कर

दिया। वक़्त आया... राहत इंदौरी को एहसास हुआ कि मुस्तक़बिल को रंग देना पड़ेगा और उसके बाद से सब कुछ रंग-बिरंगी है। इसमें भी कहीं न कहीं सीमा राहत का सब्र शामिल है... लेकिन कभी भी राहत इंदौरी ने सीमा को ज़हन से ओझल नहीं होने दिया। बीवी के जो तकाज़े हैं सब पूरे भी किये हैं। इसी बीच सवाल उछलकर सामने आया- क्या कभी बेगम को शायरी सुनायी? जवाब था- मैंने अपनी हर ग़ज़ल का पहला शेर उन्हीं को सुनाया है वो आँखों से दाद देती हैं। जब मैं उनकी आँखों में चमक देखता हूँ, समझ जाता हूँ शेर पसंद आ गया है। हालाँकि ज़्यादा शायरी समझती नहीं हैं, पर जो कम जानता है, अगर दाद दे तो समझ लीजिए अच्छा कह रहे हैं।



सीमा जी और अपने बेटे सतलज के साथ 'राहत'

घर से मिली दाद में इज़ाफ़ा ही हुआ है और बाहर भी वो शेर कामयाब रहे हैं लेकिन मुझे शौहर होने के नाते दाद नहीं मिली है, वो मैंने शायर रहकर वसूली है। ऐसा कैसे हो सकता है कि शायर किसी से मुहब्बत करे और उस पर शेर न कहे। मैंने भी ख़ूब कहे हैं-

जितने अपने थे सब पराए थे
हम हवा को गले लगाए थे

जितनी क़समें थीं सब थीं शर्मिन्दा
जितने वादे थे सर झुकाए थे

जितने आँसू थे सब थे बेगाने
जितने मेहमाँ थे बिन बुलाए थे

सब किताबें पढ़ी-पढ़ाई थीं
सारे क़िस्से सुने-सुनाए थे

एक बंजर ज़मीं के सीने में
मैंने कुछ आसमाँ उगाए थे

वरना औक़ात क्या थी सायों की
धूप ने हौसले बढ़ाए थे

सिर्फ़ दो घूँट प्यास की ख़ातिर
उम्र भर धूप में नहाए थे

मैं अकेला उदास बैठा था
शाम ने क़हक़हे लगाए थे

है ग़लत उसको बेवफ़ा कहना
हम कहाँ के धुले-धुलाए थे

आज काँटों भरा मुक़द्दर है
हमने गुल भी बहुत खिलाए थे

अम्मी की बेटी हूँ!



राहत साहब की बिटिया शिबली

हमारी जिंदगी में माँ का किरदार बहुत वसीअ है और हम तीनों भाई-बहनों की परवरिश उन्होंने ही की है। हमारी माँ भी वही थीं और बाप भी। अगर हम कुछ हैं, हमारे अंदर कोई तहज़ीब है, हमारे पास बड़ों की इज़्ज़त का कोई मेयार है, उसकी वजह हमारी अम्मी हैं। उन्होंने मुश्किल हालात में ख़ुद को मज़बूती से खड़ा रखा। घर को सँभाला, हमारी अच्छी परवरिश की। पापा के पास व़क्त रहता नहीं था... वो जो करते हैं, उसमें व़क्त मिलता नहीं है। कई-कई दिन उन्हें नहीं देखा, लेकिन वो अच्छे पापा हैं, उन्होंने कभी अपने बच्चों पर मर्ज़ी नहीं थोपी, न ही कभी उनकी राह रोकी। मैं जितनी पापा के क़रीब हूँ, उससे ज़्यादाअम्मी के। मैं जानती हूँ मेरे पापा मुझसे मोहब्बत करते हैं। उनको देखकर हिम्मत मिलती है। एक बार फिर कहूँगी अच्छा घर बनाने में माँ का किरदार बड़ा रहता है। पापा की बीमारी में भी अम्मी साथ खड़ी रहती हैं और जिस तरह की दूसरी परेशानी आयी थी, उसमें भी अम्मी ने सब्र दिखाया और घर को जिंदा रखा। वो बहुत हिम्मत वाली हैं और ख़ुदा पर उनका य़कीन मज़्बूत है और उसने उनकी मदद की है। आज भी पापा जब डॉक्टर के यहाँ जाते हैं, मम्मी साथ रहती हैं उनके ब़गैर हमारे घर का तसव्वुर नहीं है। मुझे कभी पापा की वजह से कोई ख़ास अटेंशन नहीं मिला और न कभी एहसास हुआ मैं इतने बड़े फ़नकार की बेटी हूँ।

हाँ, अभी मैं कॉलेज में जॉब करती हूँ तो वहाँ ज़रूर उत्तर प्रदेश और दूसरी जगह के बच्चे मुझसे कहते हैं, आप राहत इंदौरी की बेटी हैं? सुनकर अच्छा लगता है और पापा क्या हैं बताने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन हमें माँ-बाप दोनों का बराबर से प्यार मिला है और फ़ख्र है राहत इंदौरी की बेटी हूँ।

- शिबली इ़रफान

मेरे ससुर की वजह से मैं हूँ



सीमा राहत

"मैं जब ढाई साल की थी, मेरे वालिद का इन्तेकाल हो गया था, बाप क्या होता है? उनकी मोहब्बत क्या होती है, मुझे नहीं पता थी। मां ने मुझे पाला, तालीम दी, समझ पैदा की और अच्छा इंसान बनने के लिए जो भी चाहिए रहता है, उन्हीं का दिया हुआ है, जो जिंदगी के हर हिस्से में काम आया। मैंने कभी सोचा नहीं था, दोबारा मुझे वालिद मिलेंगे। पर अल्लाह ने दिए और उन्होंने उन सारी कमियों को पूरा कर दिया, जो मुझे बचपन से महसूस होती थीं। मेरे ससुर ने वालिद का किरदार निभाया। मेरे लिए हमेशा हाज़िर रहे और मुश्किल से मुश्किल हालात में उन्हीं का साथ रहा, जिसने कभी परेशान नहीं होने दिया और जो घर आज खड़ा है, उन्हीं की वजह से है। एक वालिद छोटी उम्र में चले गए थे, पर अल्लाह ने दूसरे भेजे और वो तब तक रहे, जब तक मैं सारी मुसीबतों से निकल न गई। जब मेरी शादी हुई, तब मां ने मेरे ससुर से वादा लिया था, इसने अपने बाप को नहीं देखा है, आपको इसे बाप का प्यार देना है। ससुर ने वादा किया और जब तक जिंदा रहे, उसे निभाते रहे। मेरी ज़िन्दगी में कई तरह की उलझनें थीं, परेशानियां थी, बहुत कुछ ऐसा था, जो बेचैन कर देता था, कुछ भी आसान नहीं था। औरत होने के बाद जिन बातों से सबसे ज्यादा परेशानी होती है, दर्द होता है, वो सब मेरे सामने था, लेकिन मेरे ससुर भी थे, जिन्होंने कभी डिगने नहीं दिया। जब भी मैं मायूस हुई वो खड़े रहे। उन्हें पता था, इसका कोई कसूर नहीं है। इसमें हर वो अच्छाई है, जो बीवी में होना चाहिए और अगर वो परेशान है, तो कहीं न कहीं शौहर वजह है। इस दर्द की दवा बने और मेरी जिंदगी का मुश्किल वक़्त उन्होंने आसान कर दिया।"

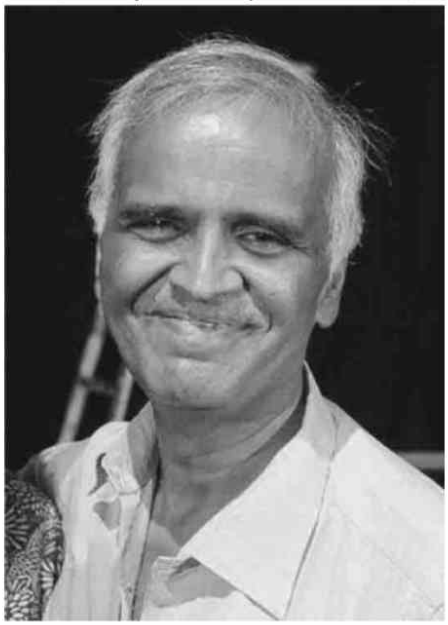
सब राहत इंदौरी की बीवी सीमा राहत बता रही हैं। जो देवास से हैं। शादी से पहले भी राहत इंदौरी की रिश्तेदार होती थीं। उनके ससुर रिफ्अतउल्लाह ने उनको बेटे के लिए चुना था और फिर बेटी भी बनाया। देवास से शुरू हुआ सफर इंदौर के अनूप नगर में जारी है। पर बहुत कुछ बदल गया है। अब बड़ा मकान है, बहुएं हैं, पोता-पोती हैं और वो सारी

परेशानियां ख़त्म हो चुकी हैं, जिनका ज़िक्र आते ही सीमा राहत की आवाज कमज़ोर हो जाती है। हालांकि अब जो जिंदगी ग़ुजार रही हैं, उसमें हर तरह ख़ुशियां हैं, जो धीरे-धीरे ही सही पर पुरानी यादों को धुंधला करती जा रही हैं। जिंदगी के पन्ने पलटाती हैं और कहती हैं- "राहत साहब चूंकि रिश्ते में थे, इसलिए शादी के पहले भी उन्हें देखा था। पर उस नज़र से कभी नहीं देखा। अचानक रिश्ता आया और फिर सब कुछ तय हो गया। मुझे पता था, शायर हैं और क्या हैं? लेकिन खानदान की इ़ज़्जत का सवाल था, जो तय हो गया था, उसे पूरा करना था। लोगों ने तरह-तरह की बातें भी कीं। क्योंकि शायर होना कुछ होना माना नहीं जाता था। लेकिन मां ने वादा किया था, जिसे मैंने निभाया और उसमें कभी कोई कोताही नहीं की। सगाई और शादी के बीच कभी राहत साहब से मुला़कात नहीं हुई। न ही मिलने का चलन था। कोई कोशिश भी नहीं की गई। लेकिन उससे पहले ़जरूर उनकी शायरी सुनी। देवास में मुशायरा पढ़ने आते थे। मैं भी सहलियों के साथ सुनने पहुंच जाती थीं। आगे बैठते थे, उनकी शायरी अच्छी लगती थी, जो अभी भी पसंद है। मुझे शायरी सुनने का शौक है, पर ज़िदंगी भर सुनना पड़ेगी, ऐसा सोचा नहीं था। देवास में आना-जाना लगा रहा, फिर शादी हो गई। यहीं मुझे दूसरे वालिद मिले, लेकिन अभी तो निकाह हुआ था, इम्तेहान बाकी था। कोई ख़ुश नहीं था, क्योंकि सबको लग रहा था, शायर है, ठीक फ़ैसला नहीं है। मेरे मुंह पर कह दिया जाता था। पर मैं सब्र करती और मेरे पास कोई चारा नहीं था। तरह-तरह की बातें होने लगीं। जिसमें सब कुछ शामिल था। धीरे-धीरे परेशानियां बढ़ने लगीं और बातें मुझ तक पहुंचने लगीं। रिश्तेदार भी चूकते नहीं थे। सब बताते थे। लेकिन मैंने कभी किसी के सामने अपने शौहर की बुराई नहीं की। उनकी कमियां नहीं निकालीं। घर में कभी उन्हें परेशान नहीं किया। सवाल पूछे ़जरूर, लेकिन उसमें कभी बदतमी़जी नहीं थी। मुझे यकीन था, जो भी हो रहा है, हमेशा नहीं होगा। बदलाव आएगा। पर जब आप परेशान रहते हैं, व़क्त लम्बा हो जाता है। यहां मेरे ससुर सहारा बनें। उन्होंने मेरे बच्चों को पाला है। तीनों थे, ये तो घर में रहते नहीं थे। वो, मैं और आदिल भाई ही सारे काम करते थे। मैं जब मायके चली जाती, ससुर ही घर संभालते। जब मैं परेशान होती, उन्हीं का हाथ मेरे सर पर होता था और आज अगर घर में रोशनी है, तो वजह वही हैं।

हां, इतना ़जरूर है, राहत साहब ने कभी नारा़जगी नहीं दिखाई, मेरी हर बात मानी। वो कभी ज़ालिम शौहर नहीं रहे। बीवी पर हुवूâमत करना उनका शौक नहीं था। हर बात मानते थे, मुझे उन्होंने घुमाया भी बहुत और मेरे हर काम में साथ भी दिया। पर जो किया, वो ़जरूर दिक्कत देता था। एक बार मैं अपनी अम्मी के साथ शादी में गई, वहीं कुछ औरतों ने कह दिया इसके शौहर ने तो किसी शायरा से शादी कर ली है। अम्मी को बुरा लगा, उन्होंने कहा, एक क्यों उसके साथ आठ दस शायरा रहती हैं। तरह-तरह के जुमले छोड़े जाते थे। पर धीरे-धीरे व़क्त ग़ुजर गया।

कम ही लोग जानते हैं, राहत साहब खाना बहुत अच्छा बनाते हैं। अकसर किचन में चले जाते थे। गोश्त बनाना उनको शौ़क था। कभी खाने पर कोई बहस नहीं की। जो दिया खा लिया, ख़ास एहतमाम उन्हें पसंद नहीं है। अब तो कम खाते हैं और सोच समझकर खाना पड़ता है, लेकिन जब शौ़कीन थे, तब भी पसंद थोपी नहीं। ख़ुद ही बना लेते थे। अमेरिका से मुशायरा पढ़कर आए। हम खाने की तैयारी कर रहे थे, लेकिन उन्होंने वहीं खड़े-खड़े खा लिया। क्योंकि उन्हें लगता था, जितना व़क्त एहतमाम में ख़र्च किया जाएगा, ़िफजूल ही रहेगा। उनके साथ मैंने कई स़फर किए हैं। माशाअल्लाह पांच बार उमराह कर चुकी हूं और हमेशा राहत साहब साथ रहे है। अब हज पर जाना है। बस थोड़ी सी इनमें हिम्मत आ जाए। स़फर कर लेंगे। शादी के बाद इनके साथ जयपुर गई थी। वहां शायरों से मिलना हुआ। ख़ुमार बाराबंकवी और ना़िज़र ख़य्यामी थे। कहने लगे-आपने शादी से पहले राहत को देखा नहीं वरना करती नहीं। मैंने कहा, मैंने देखा था और राहत साहब बोले, इन्हें भर दिखाई में मैं मिला हूँ। घर के बारे में उनको कुछ पता नहीं है। जब मैं देवास चली जाती थी और ये मुशायरे से लौटते, इन्हें पता नहीं होता था, अलमारी वैâसे खुलती है। देवास आ जाते थे। आज भी सारे काम हम ही करते हैं। इन्हें कुछ पता नहीं है। ज़िन्दगी का जो भी स़फर रहा है, यादगार रहा है और शायर की बीवी होना फ़ख की बात है।

मेरा कहा मेरे भाई के लिए सनद है
मुशायरा पढ़ने जाते तो भाई, अपने सबसे अच्छे कपड़े
घर ही छोड़ जाते थे, ताकि मैं पहन सकूँ।



राहत साहब के भाई आदिल क़ुरैशी

छोटे भाईजान कब राहत साहब हो गये पता ही नहीं चला। मैं उन्हें बरसों छोटे भाईजान कहता रहा, लेकिन जब वो राहत क़ुरैशी से राहत इन्दौरी हुए, तो जो मुझसे मिलता, राहत साहब कहता और जहाँ मैं जाता वहाँ राहत साहब साथ चलते थे... ऐसे में छोटे भाईजान पता नहीं कहाँ गुम हो गये और मेरी ज़ुबान पर राहत साहब आ गया। लम्बे अरसे से मैं उन्हें राहत साहब कह रहा हूँ। जब मैं ऐसा कहता हूँ तो भाई के साथ फ़ैन भी हो जाता हूँ। बात मुझे पुराने दिनों की करना है, इसलिए छोटे भाईजान ज़रूरी है। मेरा और उनका रिश्ता ख़ूबसूरत रहा है। वालिद की ज़्यादा कमायी नहीं थी जब भी उन्होंने कमाने की कोशिश की, बात बन नहीं पायी। ऐसे में परिवार का ज़िम्मा छोटे भाईजान पर छोटी उम्र में आ गया था। मैं पूरे यक़ीन से कह सकता हूँ, उन्होंने मेरी वालिद की तरह परवरिश की, कभी कोई कमी महसूस नहीं होने दी। मैं फ़िल्मी डायलॉग नहीं बोल रहा हूँ और न ही मेरी सहाफ़ी क़लम चल रही है; छोटा भाई बड़े भाई की बात कर रहा है।

राहत साहब मुशायरों में पहुँच गये थे मक़बूल हो चुके थे, लेकिन मेरी ज़रूरतें कभी नज़रअंदाज़ नहीं हुईं। हालाँकि बीच में कशमकश का दौर आया, जब वो इस्लामिया करीमिया में थे। महीनों तनख़्वाह नहीं मिलती थी। कैनवास पर ब्रश चल रहा था, घर तंग था, पर मेरी ज़रूरत फ़ैली हुई थी और उसे राहत साहब ने तंग नहीं होने दिया। वो मुझे साइकिल पर आगे बिठाकर फ़िल्म दिखाने ले जाते थे। मिल्की-वे टॉकीज़ में हमने ख़ूब फ़िल्में देखी हैं। उनके कपड़े भी मैंने ख़ूब पहने हैं। छोटे भाईजान जब भी कपड़े सिलवाते, उसको पहले मैं अपने जिस्म पर डालता और ज़्यादा कपड़े होते नहीं थे। भाई का मैं पैंट-शर्ट दोनों पहनता था। कपड़ों का ऐसा था, जब वो मुशायरा पढ़ने जाते दो-तीन जोड़ी टाँगकर चले जाते

थे। वो कपड़े होते थे जो उनके कलेक्शन में सबसे अच्छे रहते थे। इसलिए टाँग देते कि मैं पहन लूँ और वो जो शेर उन्होंने कहा है-

मैं आज अपने घर से निकलने न पाऊँगा
बस इक कमीज़ थी जो भाई ले गया



राहत साहब का परिवार

सिर्फ़ शेर नहीं, सच्चाई है। जिन कपड़ों को मैं पहनता था, उनको भाभी ही धोती थीं। हमेशा से छोटे भाईजान ने मेरी अना और ख़ुद्दारी का ख़याल रखा। अगर मैं कहूँ तो ज़्यादा सही रहेगा कि घर में अगर एक के पेट भरने का खाना होता था तो भाईजान मुझे देते थे। उन्हें पता रहता था मुझे क्या पसंद है और जब भी मैंने उनसे मुशायरे में शिरक़त का कहा या किसी गाने का कभी मना नहीं किया। इसके कई दिलचस्प क़िस्से हैं। दैनिक भास्कर के लिए मैं काम करता था। उस वक़्त इन्दौर में दैनिक भास्कर को पच्चीस बरस हुए थे, उसका जश्न मनाया जा रहा था। सारी ज़िम्मेदारी निशीथ सरन के पास थी, जो बेपनाह पैसा ख़र्च कर रहे थे। मैं भी उनके साथ जश्न की तैयारी में लगा था। सरन ने मुझसे कहा इन्दौर पर गाना लिखना है और अगर यह काम राहत इन्दौरी कर दें मज़ा आ जाए, क्या वो लिख देंगे? मैंने हमेशा की तरह बिना उनसे पूछे हाँ कर दी और राहत साहब से कहा, आप लिख दीजिए ख़ूब पैसा ख़र्च किया जा रहा है, आपको भी अच्छा-ख़ासा मिल जाएगा। वो मुस्कराये और बोले, तुम कह रहे हो लिख देता हूँ... और एक-दो दिन में ही गाना लिख दिया, जो काफी वक़्त तक दैनिक भास्कर की डायलर टोन रहा। जब उन्होंने गाना मुकम्मल किया तो मैं भाईजान के पास पहुँचा और कहा पेमेन्ट आप तक पहुँच जाएगा, अच्छा-ख़ासा मिलेगा। भाईजान मुस्करा दिये। कुछ दिन गुज़रे। मेरा जाना हुआ। मैंने कहा पेमेंट आ गया होगा। उन्होंने इनकार की गर्दन हिला दी और साथ ही कहा ठीक है, कोई मसला नहीं है। कुछ दिन बाद मेरा फिर जाना हुआ। भाईजान बोले- तुम्हारे अख़बार

से पेमेंट आ गया है, रखा है लिफ़ाफ़ा सामने। मैंने ख़ुशी से लिफ़ाफ़ा खोलकर देखा उसमें एक हज़ार रुपये थे, मेरे चेहरे का रंग उड़ चुका था। मैंने कहा आपने अख़बार को कोई नज़्म या ग़ज़ल पहुँचायी थी, उसका पेमेंट आया होगा। भाईजान बोले- मैंने ऐसा कुछ नहीं किया। मुझे मानना पड़ा भरोसे की भैंस के लिफ़ाफ़े से हज़ार रुपये निकले हैं। कई दिनों तक मैं भाईजान के सामने सकपकाया हुआ रहा। मुम्बई में था, वहाँ कुछ लिखना-पढ़ना तलाश कर रहा था। उन दिनों मंजुल सिन्हा सीरियल बना रहे थे 'जी साहब', जिसका टाइटल सॉन्ग लिखवाना चाहते थे। मुझसे बोले- राहत इन्दौरी लिख देंगे? मैंने फिर बिना पूछे हाँ कर दी और भाई को बोला तो हमेशा की तरह तैयार थे। कुछ घण्टों में टाइटल सॉन्ग हाज़िर था। वो वक़्त था, जब मुम्बई में भाईजान के पास ख़ूबकाम था लेकिन कहने वाला मैं था, इसलिए फ़ौरन काम हुआ। अब मंजुल सिन्हा पसोपेश में थे कि राहत साहब को कितना पैसा दिया जाए। मैंने कहा दे दीजिए पाँच हज़ार। सिन्हा बोले- बहुत कम हैं, नाराज़ हो जाएँगे। मैं पाँच हज़ार पर ही अड़ा रहा। जब वो पैसे मंजुल ने भाई को दिये तो मुस्कुराते हुए उन्होंने क़ुबूल कर लिये।

मैंने कभी राहत साहब के नाम का इस्तेमाल नहीं किया। एक बार मुझे जावेद अख़्तर का इंटरव्यू करना था। मैं लगातार फोन लगा रहा था, पर वक़्त नहीं मिल रहा था। हफ़्तेभर की मशक़्क़त के बाद उन्होंने वक़्त दिया। बात मुम्बई की है। मैं उनसे जाकर मिला। सारी बात हो गयी और जब इंटरव्यू ख़त्म हुआ तब मैंने उन्हें बताया कि मैं राहत इन्दौरी का छोटा भाई हूँ। बोले, पहले बताना चाहिए न। मेरा जवाब था, क्या आप वक़्त निकाल लेते? कहने लगे, कुछ तो किया ही जा सकता था। पर मैं कभी उनके नाम का इस्तेमाल करता नहीं था, इसलिए करने का सवाल ही नहीं था। मेरे लिए फ़ख़्र की बात है मैं सिर्फ़ राहत इन्दौरी का छोटा भाई नहीं हूँ, उनके जितने भी दोस्त हैं, उनका भी छोटा भाई हूँ।

मुनव्वर (राना) भाई ने मुझे हमेशा छोटा भाई कहा। मैं भाईजान की ग़ैर मौजूदगी में भी उनसे मिलता रहा हूँ और कई बार ऐसा हुआ है वो सिर्फ़ मुझसे मिलने इन्दौर आये हैं। मैं उनके साथ भोपाल गया हूँ और वहाँ हम मंज़र (भोपाली) भाई की मोटरसाइकिल पर तीन सवारी घूमे हैं। अनवर जलालपुरी साहब के घर रहा हूँ। उन्होंने मुझे बड़े भाई की तरह डाँट-फटकार लगायी है। जो रुख़ भाईजान का मेरे साथ पहले था, अभी भी है, उतना ही प्यार करते हैं। मक़बूल फ़िदा हुसैन से उनकी मुलाक़ात घर पर हुई थी। मैंने ही मक़बूल साहब को बुलवाया था। पहली बार जब राहत साहब मिले तो उन्होंने अपनी किताब का कवर पेज मक़बूल फ़िदा साहब से बनाने को कहा। उन्होंने कहा लाइए काग़ज़ अभी बना देते हैं। मैंने उन्हें रोका बाद में बना दीजिएगा। इस पर राहत साहब नाराज़ रहे। अच्छा-भला बन रहा था, बाद में कब मुलाक़ात होगी और कब बनेगा। बाद में राहत साहब और मक़बूल साहब की अच्छी दोस्ती हो गयी। उनकी फ़िल्मों के लिए भी राहत साहब ने गाने लिखे और जो कवर पेज घर पर नहीं बन पाया था, बाद में बन गया। बरसों से हम साथ हैं पर

कभी कोई मसला पेश नहीं आया और आ भी कैसे सकता है... जब भाई इस तरह का शेर कहते हों-

मेरी ख़्वाहिश है कि आँगन में न दीवार उठे
मेरे भाई मेरे हिस्से की ज़मीं तू रख ले

सब वो बातें हैं जो राहत इंदौरी के छोटे भाई आदिल क़ुरैशी ने कही थी लेकिन अब वो दुनिया में नहीं हैं और उनका जाना राहत इंदौरी पर गहरा सदमा है। आदिल उनके भाई थे, पर दोस्त भी थे। दोनों में फ़नकार था... एक पेंटर और शायरी के ज़रिये फ़न का मुज़ाहिरा करता, दूसरे में एक्टिंग थी, अभिनेता था, डायलॉग लिखने की सलाहियत थी। जिस दिन आदिल क़ुरैशी का इंतक़ाल हुआ, चारों तरफ सदमा था, सन्नाटा था और कोई क़ुबूल नहीं कर पा रहा था ख़ुशमिज़ाज ख़बरनवीस ऐसे कैसे अचानक चला गया। रईस फ़रोग़ का शेर है-
लोग अच्छे हैं बहुत दिल में उतर जाते हैं
इक बुराई है तो बस ये है कि मर जाते हैं

क़ुबूल तो राहत इंदौरी भी नहीं कर पाये। दिल उनका कमज़ोर हो गया है और अगर मज़्बूत होता तो इस ख़बर को सुन नहीं सकता था। अपने दोस्तों के साथ वो पंडाल में बैठे थे, आँखें लगातार रो रही थीं। जिस्म की सारी बीमारियाँ उभरकर चेहरे पर आ गयी थीं और हिम्मत की साँस फूलने लगी थी। तभी ऐलान हुआ कि आदिल भाई के आख़िरी दीदार कर लीजिए। पर राहत इंदौरी वहाँ तक नहीं जा पाये। अहमद आमेठवली का शेर है-

ज़िंदगी है अपने क़ब्ज़े में न अपने बस में मौत
आदमी मजबूर है और किस क़दर मजबूर है
जो ज़हर पिये मेरा जा-नशीन है

सतलज शेर कहने लगेगा,
लोग समझ जायेंगे मैंने देखना शुरू कर दिया है



कभी मीर से उनके वालिद ने कहा था, इश्क़ करो... तब उनकी उम्र सिर्फ़ सात बरस थी। ख़ुदा-ए-सुख़न पर असर ऐसा हुआ सिर्फ़ यही करते रहे। राहत इन्दौरी ने कहा-

मेरे बेटे किसी से इश्क़ कर
मगर हद से ग़ुज़र जाने का नइ

अब इसकी खुदाई होना चाहिए कि इसका कितना असर राहत इन्दौरी के बेटों पर हुआ है लेकिन शायरी का असर होता दिखायी दे रहा है। सतलज राहत ने उस कुर्सी की तरफ़ क़दम बढ़ा दिये हैं, जिस पर राहत इन्दौरी बरसों से हैं। उनको विरासत में शायरी नहीं मिली, उनके ख़ानदान में कोई शायर नहीं था हाँ, वालिद ज़रूर अफ़साने लिखते थे। राहत इन्दौरी भी पेंटिंग से शायरी की तरफ़ आये और हर उस ख़ित्ते में पहुँच गये, जहाँ उर्दू सुनी और सुनायी जाती है। लेकिन सिलसिला राहत इन्दौरी पर ख़त्म होता नहीं दिख रहा है उनके छोटे बेटे सतलज ने शायरी शुरू कर दी है। अभी आग़ाज़ है... सफ़र तवील है लेकिन सिलसिला शुरू हो गया है। जिस डायस ने राहत इन्दौरी को दुनियाभर में शोहरत दी, उस पर सतलज दिखने लगे हैं लेकिन राहत इन्दौरी को मंज़ूर नहीं है या यूँ कह लीजिए नहीं था। वो कह चुके हैं-

मेरे बच्चों मुझे दिल खोल के तुम ख़र्च करो
मैं अकेला ही कमाने के लिए काफ़ी हूँ

यहाँ मसला कमाई का नहीं है, उस अदबी विरासत को सँभालने का है, जो राहत इन्दौरी की है और वो कहते हैं- "मैं नहीं चाहता सतलज शायरी करे।" जब वो कह रहे थे, तब उनके सामने दो-तीन शहरों के टिकट रखे हुए थे और सिर्फ़ उनके नहीं थे, सतलज का भी। वो पढ़ने नहीं जा रहे थे, बल्कि वालिद के असा का किरदार निभा रहे थे, यानी मुशायरे के डायस तक पहुँच ही रहे हैं। राहत इन्दौरी कहते हैं- "मुशायरा शरीफ़ लोगों का काम नहीं है, आज के मुशायरे में वो सारी बुराइयाँ शामिल हैं, जिससे माँ-बाप अपने बच्चे को बचाना चाहते हैं... इसलिए मैं नहीं चाहता वो शायरी करे पर मुझे पता है, रुकेगा नहीं। मेरी माँ भी नहीं चाहती थी मैं शायरी करूँ और मैं रुका नहीं था, ये क्या रुकेगा। मुशायरे का डायस अब उतना सफ़ेद नहीं है, जितना हुआ करता था और इस सफ़ेदी को ख़त्म करने में सबके किरदार हैं। शायरी कोई गाली नहीं है लेकिन अगर शायरी नहीं है तो गाली है। मैंने शेर कहा है-

क़ब्र के पत्थर के नीचे थीं मेरी अय्याशियाँ
और मेरे आमाल का साया मेरे बच्चों पे था

सबको पता है मेरा उसकी शायरी की तरफ रुझान नहीं है; हाँ, जब वो शेर कहने लगेगा, लोग समझ जायेंगे मैंने ध्यान देना शुरू कर दिया है। मैं अपने बेटे के लिए सिफ़ारिश नहीं कर सकता, उसको आगे नहीं कर सकता। इन्दौर में मेरे दोस्त हैं अरविन्द मँडलोई। उन्होंने मुझसे कहा, हम अपने मुशायरे में सतलज को पढ़ा रहे हैं... मैंने कहा अच्छी बात है, पढ़ाना चाहिए, पर आप मेरा नाम काट दीजिए, लोगों को लगेगा मैंने अपने बेटे को आगे किया है। जबकि मैं सिफ़ारिश कर दूँ तो हिन्दुस्तान ही नहीं, हिन्दुस्तान के बाहर भी कोई मना नहीं कर सकता है। मुझे नहीं पता सतलज क्या पढ़ता है और कभी उसने मुझे सुनाया भी नहीं। सतलज का ये शेर मुझ तक ज़रूर किसी ने पहुँचाया था-

तेरे सब मोदियों पे भारी हूँ
मैं ग़ज़ल का अटल बिहारी हूँ

बहुत बुरा शेर है। मुझे शर्म आयी शेर सतलज का है। असल में लड़कों को लगता है राहत इन्दौरी सुबह मुशायरे के लिए निकलते हैं और दूसरे दिन लौट आते हैं, हाथ में लाख-पचास हज़ार का लिफ़ाफा होता है, शोहरतें होती हैं, तारीफ़ें रहती हैं। लेकिन उन्हें नहीं पता, एक रात का नहीं चालीस बरस का सफ़र है, इसको पूरा करने के लिए सिर्फ़ पैर ही नहीं चले हैं। ज़हन भी दौड़ा है। मुझे मक़बूल फ़िदा हुसैन याद आ रहे हैं, जिनकी पेंटिंग लंदन में एक करोड़ बीस लाख में बिकी थी। किसी ने उनसे पूछा- इस पेंटिंग को बनाने में आपको कितना वक़्त लगा? बोले- डेढ़ घण्टा लगा, पर सोचने में तीस साल लगे। अगर सतलज शायरी करता है तो मुझे कोई एतराज़ नहीं है, लेकिन मुझसे किसी मदद की उम्मीद उसे नहीं रखना चाहिए।

मैं क़तरा-क़तरा मरता रहा हूँ तमाम उम्र
जो ज़हर पी सके वो मेरा जा-नशीन है

कोई पूछे तो कहना पापा प्रोफ़ेसर हैं
बीमार हुए तो पता चला क्या हैं।

राहत इंदौरी को जानने-समझने का दावा कई करते हैं। उनका दावा सही हो सकता है, पर अब सतलज राहत के पास भी उनके बारे में बताने को बहुत कुछ है; होना भी चाहिए। पाँच-छह बरस से मुसलसल सफ़र कर रहे हैं। कम ही ऐसा सफ़र है जिसमें राहत इंदौरी का हाथ सतलज के काँधे तक न गया हो। उन्हें बेटे की ज़रूरत थी, सतलज हाज़िर थे। वो सब कर रहे हैं जो बेटे को करना चाहिए। हालाँकि शुरूआत ऐसी नहीं थी। दूरियाँ थी, कभी क़रीब आये नहीं थे। एक घर था, पर रिश्ता आम बाप-बेटे की तरह नहीं था। फिर सतलज के जीने का अंदाज़ भी राहत इंदौरी को पसंद नहीं था। अब वो उसकी बात सुनने लगे हैं; मान भी लेते हैं। सतलज कहते हैं- मुझे नहीं पता, मैं कभी राहत साहब की गोद में भी बैठा हूँ दूर ही रहा और जिस तरह बच्चों के लाड़-प्यार होते हैं, मेरे नहीं थे, पर राहत साहब ने कभी डाँटा नहीं। कई शिकायत हुई, कुछ ऐसी थी जिस पर पिटाई बनती थी, तब भी ख़ामोश रहे। घर में उनका रहना कम ही था। सारा काम चाचा (मरहूम आदिल क़ुरैशी) देखते थे। जब कॉलेज गये, उन्होंने ही एडमिशन कराया। मैं, फ़ैसल, शिबली सबको वही मशवरे देते थे। हम जो कहते, बस पापा की उसमें हाँ होती थी। मुझे नहीं पता था मैं किसका बेटा हूँ, क्योंकि शायरी समझ आती नहीं थी। पाँचवी या छठवीं में था तब राहत साहब के गाने धूम मचा रहे थे। 'सर' रिलीज हो गयी थी, लेकिन मम्मी ने मुझसे कहा था, कोई पूछे पापा क्या करते हैं, बताना प्रोफ़ेसर हैं, पढ़ाते हैं... क्योंकि उस वक़्त शायरी से बड़ा काम बच्चों को पढ़ाना हुआ करता था। आई.के. कॉलेज में राहत साहब पढ़ाते थे और मैं यहीं के सेंट उमर स्कूल में पढ़ता था। कई टीचर्स ने उनसे मेरी शिकायत की, लेकिन उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा। हाँ, मम्मी को आकर ज़रूर बता देते थे, क्या कुछ चल रहा है। फेल हो गये, कुछ नहीं कहा, पास होने पर शाबाशी नहीं दी। एक बार सप्लीमेंट्री आ गयी थी, मम्मी की झाड़ू चल रही थी। चिल्ला-पुकार थी, पापा बैठे थे। मम्मी कह रही थीं तीन में सप्लीमेंट्री आ गयी है। पापा बोले- अरे भई ध्यान से देखो, इसने तऱ़äकी की है, चार में आयी है। कभी कोई दबाव नहीं रहा। आज़ादी मिली, लेकिन मुझे पहली बार तब पता चला मैं किसका बेटा हूँ। जब राहत साहब को दिल का दौरा पड़ा, अस्पताल में भर्ती हुए, दिन-रात भीड़ लगी रहती थी। नेता-अफ़सर सब मिलने आते थे। लगा पापा कुछ हैं। यहाँ से उनकी जिंदगी में बदलाव आया। इससे पहले तक उन्होंने जो भी कमाया, सिर्फ़ उड़ाया। उनके ऩज्दीक पैसा कभी तिजोरी में रखने की चीज़ नहीं था। जब बीमार हुए, एहसास हुआ कुछ बचाना भी होगा, वरना मेरे घर का क्या होगा। जैसे ही वो बीमारी से बाहर आये, घर भी बाहर निकल गया था और राहत साहब फिर मुशायरा के डायस थे। हम छोटे ़फ्लैट में रहते थे। इसके बाद उन्होंने जो कुछ भी किया, सिर्फ़ अपने घर

के लिए किया, बीवी-बच्चों के लिए किया। फ़िल्मों में गाने लिखने फिर से पहुँच गये और मुशायरे तो उनके साथ थे। मेरा यहाँ भी कोई दख़ल नहीं था। कॉलेज पूरा हो गया था, शायरी शुरू हो गयी थी और इसकी ख़बर राहत साहब को लग गयी थी। नहीं चाहते थे मैं ऐसा करूँ। उन्हें मंज़ूर था मैं जो लिखूँ या कहूँ, अख़बार या रिसाले में छपे, लेकिन मुशायरा उन्हें बर्दाश्त नहीं था। पर मैंने ऐसा कुछ किया नहीं था जिससे मैं किसी किताब में दर्ज हो जाऊँ इसलिए इधर-उधर जुगाड़ करके पढ़ लेता था। एक दिन मुनव्वर राना हमारे घर आये। मैं सामने ही था। राहत साहब ने कहा– "यार मुनव्वर! इसका कुछ कर, शायरी का शौक़ लग गया है इसे, नौकरी पर लगा वरना बरबाद हो जाएगा। मुनव्वर साहब को राज एक्सप्रेस का मुशायरा पढ़ना था, वो मुझे साथ ले गये। अवधेश बजाज एडिटर हुआ करते थे। राना साहब ने उनके सामने बात रखी जो ख़त्म भी नहीं हुई थी और मुझे काम मिल गया था। राना साहब को राहत साहब ने कहा था, वो उनकी बात टाल नहीं सकते थे, सब ख़ुश थे। चलिए काम मिला, शायरी से दूर हो जाएगा। लेकिन राहत साहब को पता था, ऐसा होगा नहीं, क्योंकि वो भी कहाँ माने थे। राहत साहब फिर से बीमार हो गये। पैर में सूजन आने लगी, चलने में दुश्वारियाँ थीं। अब उन्हें किसी की ज़रूरत थी और घर के लोग उन्हें अकेला जाने देना नहीं चाहते थे। वो तरह-तरह के बहाने बनाते, लेकिन कोई बात में नहीं आता। फिर जब घर की तरफ़ देखा गया, सिर्फ़ मैं ही ऐसा था, जिसके पास वक़्त था, इसलिए मुझसे कहा गया कि तुझे ही राहत साहब का झोला उठाना है। मुझे लगा इससे बेहतर क्या हो सकता है; अगर इसके ज़रिये उनकी ख़िदमत का मौक़ा मिल जाए, ज़िंदगी बन जाएगी। मुझे राहत साहब के बारे में बहुत कुछ पता था, लेकिन अभी देखना बाक़ी था। जब मैं उनके साथ निकला, समझ आया, ज़िंदगी क्या है और 'क़लंदर' कैसे बना जाता है। वो मिल म़ज्दूर के बेटे थे, जो मुझे अक्सर दिख जाता था। उनके लिए कोई मसला नहीं था, कहाँ सो रहे हैं, कहाँ बैठे हैं। रेलवे स्टेशन पर ही मुझसे कह देते, बिछा दे! और वहीं सो जाते। लम्बे-लम्बे सफ़र करते... कभी रेल, बस के अलावा जो सवारी मिलती निकल पड़ते। बड़ी हिम्मत के बाद मैंने उनसे कहा- मुशायरा आप अपनी मर्ज़ी का पढ़िए, लेकिन सफ़र मेरे मुताबिक़ होगा; आप वहीं जाएँ जहाँ आसानी हो, क्योंकि जिस्म अब बेतरतीब सफ़र की इजाज़त देता नहीं है। उन्होंने ख़ुद भी मान लिया है, दवा के सहारे चलना है, वरना इसकी कभी फ़िक्र की नहीं थी। उनके लिए ज़ियादा ख़ास है और जो उनके बरसों-बरस के साथी हैं उन्हें इंकार नहीं कर पाते हैं। इसलिए उन्हें उनके फोन से दूर रखना होता है। मेरी शादी के पहले मैंने कभी उनसे बात नहीं की, पर अब हर तरह की बात हो जाती है। अब मैं उनका राज़दार हूँ, पर जो भी उनकी आदतें थीं, ख़त्म हो गयी हैं। जब भी कोई उस तरफ़ ले जाने की कोशिश करता है राहत साहब ख़ुद ही इंकार कर देते हैं। अब वो मंडली भी रही नहीं और सबको पता है अकेले सफ़र नहीं करते, उनका बेटा भी होता है। इसके बाद भी मुझे उन्होंने बतौर शायर क़ुबूल नहीं

किया है और कभी मेरे शेर पर दाद नहीं दी; हाँ डाँट ज़रूर पड़ी है। उत्तर प्रदेश के एक मुशायरे में मैंने पढ़ दिया-

सभी को ज्ञान बाँटा जा रहा है
ये हिंदुस्तान बाँटा जा रहा है

हमें ये मंदिरो-मस्जिद दिखाकर
हमारा ध्यान बाँटा जा रहा है

सुख़नवर चापलूसी कर रहे हैं
उन्हें सम्मान बाँटा जा रहा है

वहाँ वसीम बरेलवाr साहब और अनवर जलालपुरी साहब मौजूद थे। मैंने शेर कहीं और पहुँचाने की कोशिश की थी, पर मुझे नहीं पता था अवार्ड इनको भी मिला है। जब मैं होटल पहुँचा, राहत साहब ने मेरी खिंचाई कर दी। मेरे पास कोई जवाब नहीं था, लेकिन इससे पता चला कि मेरे शेर सुनते हैं। पाँच-छह साल में मैंने पाँच-छह ऐसे मुशायरे पढ़े हैं जिनमें राहत साहब मौजूद रहे हैं। वो मेरी कोई सिफ़ारिश नहीं करते, उनकी फ़ितरत में नहीं है। मैंने बताया न नौकरी भी मुझे मुनव्वर साहब ने दिलायी थी वैसे भी मैं उनकी शायरी के करीब था और अभी भी हूँ। दुनिया घूम लिया हूँ, पता चलता राहत साहब के कैसे-कैसे दीवाने हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो अमेरिका से हिंदुस्तान आ जाते हैं, ले जाने की ज़िद करते हैं। असल में अमेरिका के वा़rजा की जो दि़व़äकत आयी थी, इलाज की वजह से उन्होंने वीज़ा देने से इंकार कर दिया था। जो भी मसला रहा हो, पर अब राहत साहब की ज़िद है, वीज़ा अगर घर आयेगा तभी जाऊँगा। जो वहाँ से आता है, गुज़ारिश करता है, उसे कहते हैं वीज़ा पहुँचा दो घर तभी चलूँगा। अब उनके लिए कोई मुल्क मायने रखता नहीं है, पूरी दुनिया घूम चुके हैं। मैं देखता हूँ जहाँ भी जाते हैं, होटल से बाहर निकलते नहीं हैं, सड़क को निहारते भी नहीं हैं... सब इतना देख चुके हैं कि उनके लिए कुछ नया नहीं है-

आजकल छुट्टी के दिन भी घर पड़े रहते हैं हम
शाम, साहिल, तुम, समंदर सब पुराने हो गए

तस्वीर बनी और बोलने लगी

पेंटिंग तो अभी भी कर रहा हूँ, बस रंग की जगह ल़फ्ज़ आ गये हैं



राहत साहब, एक मुसव्विर-ए-रंग

बेहतर मुस्तक़बिल ने अगर राहत इन्दौरी के हाथ में क़लम और किताब थमा दी थी, तो ज़रूरत ने ब्रश पकड़ा दिया। ज़िन्दगी तंग थी, घर को ज़रूरत थी; जिसकी वजह से राहत इन्दौरी उस उम्र में काम करने लगे, जो ख़्वाब देखने की थी। पेंटिंग में दिलचस्पी थी, इसे पेशा बना लिया। वजह... दिलचस्पी के आगे ज़रूरत खड़ी थी, पर सिर्फ़ काम नहीं मिला, ब्रश से फ़न का मुज़ाहिरा भी किया। उनके क़रीब पहुँच गये जो ब्रश के बादशाह कहलाते थे। बात मक़बूल फ़िदा हुसैन की है, जिनके साथ राहत इन्दौरी ने ख़ासा वक़्त गुज़ारा है। जब उनके हाथ में ब्रश आया तो पता चला फ़नकार मौजूद है। लकीरें फ़न का मुज़ाहिरा करने लगीं; रंग बोल पड़े कि वो किसी फ़नकार की आहट सुन रहे हैं।

तस्वीरें इशारा करने लगीं और सारे इशारे उस वक़्त सही साबित हुए, जब पेंटर राहत क़ुरैशी बन गये 'राहत इन्दौरी'। पेट की आग को रोटी देने के लिए राहत इन्दौरी ने वक़्त के सारे सुपर स्टार कैनवास पर उतार दिये। इन्दौर में उन दिनों फ़िल्मी पोस्टर ख़ास हुआ करते थे, जिन्हें देखने लोग दूर-दूर से आते थे। इन्हें बनाने में राहत इन्दौरी को महारत हासिल थी। जिस ब्रश से वो दिलीप कुमार को खड़ा करते, उसी से देवानन्द और राजकपूर भी वजूद में आ जाते थे। राजेश खन्ना की गर्दन का हर हिस्सा उन्होंने अपने ब्रश से दिखाया। जब उनसे रंग की बात होती है, पेंटिंग का ज़िक्र किया जाता है, कहते हैं- "मैंने सिर्फ़ फ़िल्मी पोस्टर नहीं बनाये, साइनबोर्ड भी ख़ूब बनाये और एक वक़्त ऐसा था बाज़ार का तक़रीबन हर बोर्ड मेरे ब्रश से गुज़रता था। पेंटिंग मेरी ज़रूरत थी, शौक़ भी था। जब मैंने पहली बार ब्रश हाथ में लिया तभी एहसास हो गया था कुछ किया जा सकता है। रंग के साथ खेल चलता रहा और मुझे नहीं

पता था ब्रश के बजाय मैं ल़फ्ज़ों से पेंटिग करने लगूँगा। अभी भी मेरे अन्दर पेंटर मौजूद है, बस किरदार बदल गया है।"

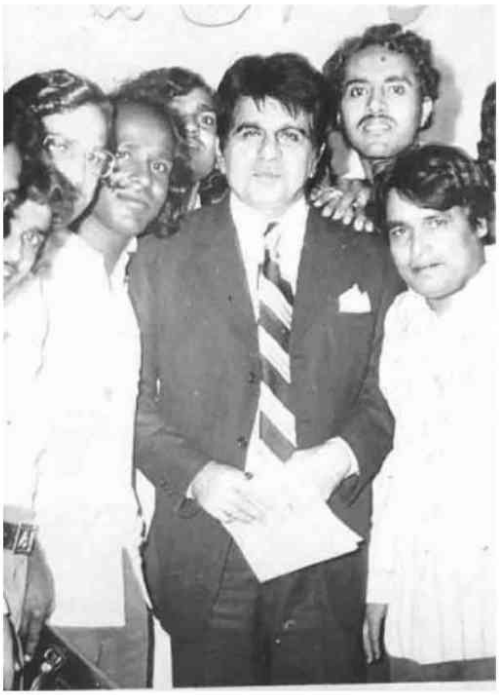
अब वो ल़फ्ज़ों से रंग बिखेरता है। पेंटिंग से सिर्फ़ घर ही नहीं चला, वो फ़नकार भी परवरिश पाता रहा जो अब राहत इन्दौरी के तौर पर सामने है। यहीं मैंने ल़फ्ज़ों को बुनना सीखा, पर किसको कहाँ लगाना है; नहीं जानता था। जिस तरह से ल़फ्ज़ आने लगे थे, ख़याल दौड़ने लगा था। मुझे समझ आने लगा कुछ होने वाला है। पेटिंग को मैंने इसलिए चुना कि रिश्ते के मामू से माँ ने कहा था, इसको कहीं नौकरी पर लगाना है। वो पुलिस में थे, उन्होंने कहा पेन्टर बना देते हैं, वहाँ से पुलिस में शामिल करवा लेंगे। लेकिन पेन्टर बनते ही शायर बन गया। मेरी क़िस्मत में पेंटर बनना नहीं था और अच्छा हुआ, वरना पुलिसवाला बनना पड़ता। जब तक पेंटिंग की, नम्बर वन रहा।" राहत इन्दौरी से पूछ लिया क्या शायरी में रंग आये? तभी करीब बैठे सतलज राहत ने शेर याद दिलाया और राहत इन्दौरी ने अपने अन्दाज़ में कहा- "देखो... आया न काम; लोग कहते हैं औलादें काम नहीं आती हैं।"

अभी रंगों की ज़बाँ गूँगी पड़ी है लेकिन
जब ये तस्वीर बनेगी तो क़यामत होगी

फ़रिश्ते अनगिनत रंगों की चादर तान लेते हैं
जब उड़ते बादलों में हम तेरी सूरत बनाते हैं

राहत के रंग का गवाह हूँ

जब दिलीप कुमार ने खड़े होकर दाद दी थी



दिलीप कुमार और राहत इंदौरी

राहत इंदौरी जब रंग से खेला करते थे, तब भी उनके पास कई दोस्त थे, लेकिन उनकी रंगीन ज़िन्दगी के गवाह अब ज़्यादा नहीं हैं। जो हैं, उनमें ख़ूबसूरत आवाज़ के मालिक हीरानंद दानीवर भी हैं। इंदौर में ही रहते हैं, पर अरसे से राहत इंदौरी से मिल नहीं पाये थे। क़रीब पन्द्रह साल बाद मिले और जब उनसे जवान राहत इंदौरी का ज़िक्र किया, तो उन्होंने बच्चे राहत क़ुरैशी से शुरूआत की। हीरानंद दानीवर जैसे ही अपने दोस्त की बात शुरू करते हैं, कुछ अलग हो जाते हैं। शेर उन्हें ना-मालूम कितने याद हैं और वो ऩज्में भी याद हैं जिन्हें शायद राहत इंदौरी भूल गये हैं। सिर्फ़ शायरी तक नहीं हैं, उनकी तिजोरी में शरारती राहत इंदौरी भी क़ैद हैं। हर क़िस्सा पेट पकड़ने को मजबूर कर देता है और बताता है आज का बड़ा शायर कितना ख़ुशमिज़ाज, मस्ताना और शरारती रहा है। कई घण्टे

आसानी से दानीवर निकाल देते हैं और मजाल है उनकी ज़बान राहत इंदौरी से थोड़ी भी भटक जाए। कहते हैं- "मैं और राहत इंदौरी उन दिनों (1966) के दोस्त हैं जब हम नूतन स्कूल में नवीं में पढ़ा करते थे, दसवीं और ग्यारहवीं भी हमने यहीं पढ़ी। उसके बाद आर्ट्स कॉलेज में एडमिशन ले लिया। मुझे गाने का शौक़ था, चटर्जी आर्वेâस्ट्रा का मैं पहला सिंगर था, मोहम्मद रफ़ी को गाता था। कॉलेज में कॉम्पीटिशन था, तब राहत इंदौरी ने मुझसे कहा, मैं भी गाऊँगा। मुझे नहीं पता था वो गा लेते हैं। मैंने पूछा क्या गाओगे? बोले-'झूमती चली हवा याद आ गया कोई...।' मुझसे पूछा तुम क्या गाओगे? मैंने कहा, राजा और रंक का- फिरकी वाली तू फिर आना। राहत बहुत आसान नहीं थे, शरारत करते थे और हाथ भी उनका खुला था, लड़ाई-झगड़े कर लेते थे, लोगों की फिरकी लेना उनका शगल था, मस्तख़ोर थे और फ़नकार होने के सारे गुण उनमें दिखते थे... पर इमानदारी से कहें किसी को नहीं पता था ऐसा भी होने वाला है जैसा हुआ है और जहाँ तक राहत पहुँचे हैं। जहाँ हमें गाना था, वहाँ किसी को गाने नहीं दिया जा रहा था, शूटिंग हो रही थी। तभी राहत पहुँचे और उन्होंने गाना बदल दिया। अब उनकी ज़बान पर था- 'ये दिल न होता बेचारा...।' पर बात बन नहीं पायी, लेकिन उन्हें समझ आ गया गाना उनका काम नहीं है। बस, इसके बाद उन्होंने ल़फ्ज़ बुनना शुरू कर दिये। हालात ठीक नहीं थे इसलिए मैंने कॉलेज बदला, क्रिश्चियन कॉलेज पहुँच गया, लेकिन राहत सिर्फ़ पढ़ते नहीं थे, काम भी करते थे। जहाँ कभी सरोज टॉकीज हुआ करता था, बस वहीं उनकी दुकान थी। शानदार पेण्टर थे। फ़िल्मों के पोस्टर तो बनाते ही थे, दुकानों के बोर्ड बनाने में उनको महारत थी। मैं टेलरिंग का

काम करने लगा था। ऐसा कोई दिन नहीं था, जब उनसे मुलाक़ात न होती हो। उनकी दुकान पर वक़्त गुजरता था। वो मेरी दुकान पर साइकिल से आते थे। जहाँ वो काम करने जाते, हम भी साथ चले जाते। वो सीढ़ियों पर चढ़कर बोर्ड बनाते और नीचे से हम सामान उठाकर देते थे। लाजवाब पेण्टर थे और ब्रश पर उनकी शानदार पकड़ थी। जहाँ मिल्की-वे टॉकीज हुआ करता था, वहाँ वो फ़िल्मों के पोस्टर बनाया करते थे। वहाँ तो मेरा ज़्यादा जाना हुआ नहीं, लेकिन जो उनकी दुकान थी वहाँ तक़रीबन रोज़ ही जाते थे। पेंटिंग के साथ उन्होंने शेर कहना शुरू किया और जो पहले कुछ शेर मेरे कान तक पहुँचे, वो थे-

जो लोग तेरे प्यार तेरे ग़म में मर गए
वो ज़िंदगी की माँग में सिंदूर भर गए

उफ़ ये सिसकते साज़, ये शम्में धुआँ-धुआँ
तुम क्या गये कि ब़ज्म को वीरान कर गये

1968-69 की बात होगी, तब कहे थे। पूरे पचास साल हो गये हैं और सिर्फ़ बात शेर नहीं कहते थे, ऩज्में भी ख़ूब कही हैं। उनके पास उन्हीं दिनों की ऩज्में हैं, क्योंकि बाद में इस तरफ़ आये नहीं। उनकी ऩज्म है, जिसका उनवान है **'पहली तारीख़'...** देखें-

तीस दिन पूरे हुए, जाओ कलेंडर बदलो
वो जो फ़ेहरिस्त बनी रक्खी है ह़फ्ते भर से
अब ज़रा ग़ौर से पढ़ लूँ, तो कोई फ़ैसला हो
कल के सपनों के लिए कुछ न बचा पाऊँगा
इससे पहले कि अभी शाम का सूरज डूबे
कितने ही हिस्सों में तक़सीम किया जाऊँगा
उसकी पाज़ेब रहन रक्खी है कितने दिन से
पीठ पीछा है, मगर वो भी बड़ी साबिर है
एक साड़ी के लिए टाल रहा हूँ कब से
हाँ मगर दूध का बिल, गुड्डू के स्कूल की फीस
वो तो देना ही पड़ेगी मुझे सबसे पहले
अब मेरी अपनी तमन्नाओं का मरघट हूँ मैं
हाँ, मगर माँ के लिए शॉल तो लाना है मुझे
सहर-ओ-शाम के सैलाब में खो जाता हूँ

सोचता हूँ तो यही सोचता रह जाता हूँ
इस अँधेरे में मेरा साया रहेगा कितना
कट-कटाकर मुझे तनख़्वाह मिलेगी कितनी
दे देकर मेरा सरमाया रहेगा कितना?
तीस दिन पूरे हुए जाओ कलेंडर बदलो

मुझे उनसे मुहब्बत है। उनके साथ वक़्त गुज़रा है इसलिए पचास बरस बीत जाने के बाद भी सब कुछ कल का लगता है और ज़हन में रह भी गया है। जब भी मुझे राहत की याद आयी है, नज़्मों का सहारा रहा है- उनकी नज़्म है **'शादी के उन्नीस बरस'** जो मेरे दिल के क़रीब है-

अब कहाँ चाँदनी रातों की मुहब्बत के मज़े
शाम को आता हुआ देख के ऑफ़िस से मुझे
तुम ज़रा झेंप के दहलीज़ से हट जाती थीं
और कुछ सोच के फिर मुझसे लिपट जाती थीं
क्या तुम्हें याद हैं अब भी वो सुनहरी रातें
पौ-फटे तक वो मुहब्बत भरी मीठी बातें
चाँदनी रात के मलमल में बदन छनते थे
हर नयी रात नये ताजमहल बनते थे
याद है तुमको मेरी छेड़ का आलम कि नहीं
सुब्ह जब मुझको जगाने के लिए आती थीं
मेरे हाथों को वहीं मोड़ के चल देती थीं
तुम दुपट्टे को वहीं छोड़कर चल देती थीं
अपनी आँखों में बहारों को लिये फिरता था
वो ज़माना भी ज़माना था तुम्हें क्या मालूम
जब मेरी रूह पे छायी थी तुम्हारी ख़ुशबू
और मेरे जिस्म से आती थी तुम्हारी ख़ुशबू
वक़्त इस तरह गुज़र जाएगा मालूम न था
देखते-देखते उन्नीस बरस बीत गये
घर में इक राजा है, इक गुड्डी है, इक पप्पू है
अब भी दोनों हैं, मगर दिल पे बहुत क़ाबू है
हुस्न तो आज भी दिलकश है, मगर जाने क्यूँ
इश्क़ तो आज भी सरकश है, मगर जाने क्यूँ
अब कहाँ रात गुज़रती है वो पहले की तरह
अब कहाँ ज़ुल्फ़ बिखरती है वो पहले की तरह
अब न जिस्मों को शिकायत न थकन होती है
अब न माथे पे न बिस्तर पे शिकन होती है
तुमको बेटी की बिदाई का ख़याल आता है
मुझको बेटे की पढ़ाई का ख़याल आता है
दोनों हालात की तस्वीर में खो जाते हैं
एक ही करवट से जो सोते हैं तो सो जाते हैं

अब कहाँ चाँदनी रातों की मुहब्बत के मज़े...

हालाँकि कभी राहत ने बताया नहीं, लेकिन रंग के साथ खेलते हुए उन्हें शायद किसी लड़की से मुहब्बत हो गयी होगी। हमने कभी पूछा नहीं, लेकिन उनकी ऩज्म कुछ कहती थी-
जाने तुझको ख़याल हो कि न हो,
उस पुरानी सड़क के नुक्कड़ पर
इक पुराना मकान था मेरा
जिसके दरवाज़े थे कि आठों पहर
तेरे आने की राह तकते थे
जिनकी बोसीदा बारसाख़ों पर
बिरंजियों से तेरा नाम मैंने खोदा था
अब उसी जगह नया मकान बना लिया है
मगर मैं बहुत परीशाँ हूँ
लोग मुझसे यही सवाल करते हैं
तुमने दरवाज़े क्यों नहीं बदले?



दानिवर अपने दोस्त राहत के साथ

धीरे-धीरे नशिस्त का सिलसिला शुरू हुआ और तक़रीबन हर जगह मैं भी जाता था। मालवा मिल में महफ़िल थी, महमूद नश्तरी निज़ामत कर रहे थे और राहत ने कहा, मेरे दोस्त का तरन्नुम बहुत ख़ूब है, उससे भी कुछ सुना जाए और मैंने राहत की ही ग़ज़ल पढ़ी-
सफ़र की हद है वहाँ तक कि कुछ निशान रहे
चले चलो कि जहाँ तक ये आसमान रहे

मुझे ज़मीन की गहराइयों ने दाब दिया
मैं चाहता था मेरे सर पे आसमान रहे

वो इक सवाल है फिर उसका सामना होगा
दुआ करो कि सलामत मेरी ज़बान रहे

अब अपने बीच मरासिम नहीं अदावत है
मगर ये बात हमारे ही दरमियान रहे

ख़ूब दाद मिली, लेकिन मेरा तल़फ्फ़ुज़ ठीक नहीं था इसलिए उसे सुधारने की सलाह भी मिल गयी। राहत ने मुझे उर्दू के क़ायदे लाकर दिये, पर सीख नहीं पाया। बाद में उन्होंने कैसर इंदौरी को उस्ताद बना लिया था जो हुकुमचंद मिल में काम करते थे। पर उनके यहाँ वो ज़्यादा रहे नहीं। अभी भी मैं राहत को सुनता हूँ, उसके शेर मुझे याद हैं। लेकिन जो शुरूआती ग़ज़ल हैं वो मुझे ज़्यादा अज़ीज़ हैं और हमेशा मेरे साथ रहती हैं-

चराग़ डसती हुई आँधियाँ भी आयेंगी
अगर सफ़र है तो दुश्वारियाँ भी आयेंगी

मैं मौसमों का थका हूँ मुझे हक़ीर न जान
मेरे शजर में कभी पत्तियाँ भी आयेंगी

मुझे क़रीब से पढ़, सरसरी नज़र से न देख
मेरी किताब में दिलचस्पियाँ भी आयेंगी

मुझे याद है इतने ही शेर उन्होंने सुनाये थे, फिर कहने लगे, इजाज़त हो तो एक का इज़ाफ़ा और कर दूँ, पर सिर्फ़ मस्ती के लिए है, क्योंकि उसकी रग-रग में मज़ा था। फिर उन्होंने जो शेर कहा, उस पर हमारे पास दाद के बजाए ठहाके थे-

हम अपनी आँख पे पट्टी तो बाँधने से रहे
दुकान है तो यहाँ लड़कियाँ भी आयेंगी

रानीपुरा के पटियों पर हमारा ख़ूब वक़्त गुज़रा है। साक़ी इंदौरी भी हमारे साथ ही थे। मेरी बहन की शादी में कुलकर्णी के भट्ठे पर याक़ूब साक़ी ने शेर कहा था-

गंदी गलियाँ टूटी छप्पर टेढ़े-मेढ़े रस्ते हैं
इस बस्ती में कैसे-कैसे राजदुलारे बसते हैं

दोस्ती के इस कुनबे में रमेश चौकसे भी दाख़िल हो गये थे, जिनका तख़ल्लुस कबीर था। कह लेते थे और राहत के क़रीब थे। उनके कुछ शेर मुझे याद हैं-

दो मुहब्बत करने वाले डूबे गुज़रे साल में
इस बरस पानी नहीं है गाँव के इस ताल में

अनगिनत सदियाँ इसी जंगल में ढोना है मुझे
राम तो वापस चले जायेंगे चौदह साल में

सोहबतों में तुम फ़क़ीरों की रहो जाकर 'कबीर'
ज़िंदा रहना सीखना हो गर किसी भी हाल में

मुझे राहत की वजह से इंदौर के दूसरे उस्ताद शायरों से मिलने का मौक़ा भी मिला और इसी सिलसिले में मेरी मुलाक़ात सरवर ख़ान से हुई; बाद में राहत को मैंने उनसे मिलाया। फिर हम लोग साथ रहने लगे। सरवर ख़ान भी कह लेते थे-

न जाने किन उमीदों पर बढ़ायी तश्नगी मैंने
जो पायी बाद सदियों के तो इक सूखी नदी मैंने

यक़ीं मानो मेरे पाँवों के तलवे इसके ज़ामिन हैं
पिलाकर के लहू काँटो को दी है ज़िंदगी मैंने

मैंने राहत के साथ कई शहरों का सफ़र किया। मुम्बई भी हम गये। जिस मुशायरे में थे, उसके मेहमाने ख़ुसूसी दिलीप कुमार और हाजी मस्तान थे। सदारत नौशाद साहब की थी। राहत को कलकत्ता से आना था, उन्होंने हमें इंदौर से बुला लिया था। बमुश्किल मुशायरागाह तक पहुँच पाये थे। लेकिन उसके बाद दिलीप कुमार, हाजी मस्तान, नौशाद से हम मिलें। इसके अलावा भी कई यादगार सफ़र रहे हैं। इस मुशायरे में राहत को ख़ूब दाद मिली, उन्होंने पढ़ा था-

तू तो अपने मश्विरों का ज़ख़्म देकर छोड़ दे
मुझको ज़िंदा किस तरह रहना है मुझ पर छोड़ दे

जब ये शेर पढ़ा तो दिलीप कुमार खड़े होकर दाद दे रहे थे-

दिल तेरे झूठे ख़तों से बुझ चुका, अब आ भी जा
जिस्म के गौतम से क्या उम्मीद कब घर छोड़ दे

जब मैं उनके घर जाता तो उनकी वालदा मुझे देखकर राहत से कहती थीं- ये बाबू जैसा लगता है, तेरा दोस्त है न! राहत के वालिद की आवाज़ में खनक थी। आदिल क़ुरैशी की आवाज़ वैसी ही थी। मुझे फ़ख्र है मेरी ज़िंदगी का बड़ा हिस्सा राहत के साथ गुज़रा है और उसे मैं ज़िंदगी की राहत मानता हूँ। उनकी कुछ ग़ज़लें और हैं जो अब सुनने को मिलती नहीं हैं, पर उन्हें सुना जाना चाहिए-

मुझ पर नहीं उठे हैं तो उठकर कहाँ गये
मैं शहर में नहीं था तो पत्थर कहाँ गये

कितने ही लोग प्यास की शिद्दत से मर गये
मैं सोचता रहा कि समंदर कहाँ गए

मैं ख़ुद ही मेज़बान हूँ मेहमान भी हूँ ख़ुद
सब लोग मुझको घर पे बुलाकर कहाँ गये

पिछले बरस की आँधी में गुम्बद तो गिर गया
अल्लाह जाने सारे कबूतर कहाँ गये

राहत का वक़्त मुशायरे में गुज़रने लगा था, लेकिन जो वक़्त उन्होंने हमारे साथ गुज़ारा था, उसे हमेशा याद करते और इसी सिलसिले में उन्होंने ग़ज़ल कही थी-
मैं जब चलूँ ये दौलत भी साथ रख देना
मेरे बुज़ुर्ग मेरे सर पे हाथ रख देना

ढलेगा दिन तो सुलगने लगेगा दिल मेरा
मुझे भी घर के चराग़ों के साथ रख देना

मैं एक सच हूँ अगर सुन सको तो सुनते रहो
ग़लत कहूँ तो मेरे मुँह पे हाथ रख देना

पहली ग़ज़ल थी तो रोमांटिक, पर लहजा इन्दौरी नहीं था,
इसलिए किसी ने उसे मेरी नहीं माना



ब़ज्म-ए-अदब लायब्रेरी की नशिस्त के दौरान

ब़ज्म-ए-अदब लाइब्रेरी में अब कहने-सुनने का दौर नहीं रहा, लेकिन इस छोटी-सी लाइब्रेरी ने दुनिया को राहत इन्दौरी दिया है और इस लाइब्रेरी की बरकतें हैं, यहाँ से सुनाने का जो सिलसिला शुरू हुआ था, जग में जारी है। शायद कोई ऐसा शहर हो, जहाँ उर्दू बोली और सुनी जाती हो, वहाँ राहत इन्दौरी न पहुँचे हों। इस लिहाज़ से राहत इन्दौरी के सफ़र में ब़ज्म-ए-अदब लाइब्रेरी ख़ास हो जाती है और ज़हन की लाइब्रेरी से आज तक ओझल नहीं हुई है। राहत इन्दौरी को पता था कि कहने के लिए सुनना ज़रूरी है, इसलिए जहाँ भी शायरी की महफ़िल होती, पहुँच जाते। उन दिनों रानीपुरा शायरी का मरकज़ हुआ करता था और ब़ज्म-ए-अदब लाइब्रेरी में कहने-सुनने का दौर चलता था। इन्दौर का हर शायर यहाँ होता था। सुनने वालों में राहत इन्दौरी भी हुआ करते थे। बाद में रानीपुरा ही राहत इन्दौरी का अदबी मरकज़ बना।

ज़हनी लाइब्रेरी को खोलते हुए राहत इन्दौरी कहते हैं- "मेरे शायराना सफ़र में ब़ज्म-ए-अदब ख़ास है, क्योंकि यहीं से मेरी इब्तिदा हुई और जो जहाँ पैदा होता है उसे भूल नहीं पाता है। मैं इन्दौर में पैदा हुआ, मेरी शायरी ब़ज्म-ए-अदब लाइब्रेरी में पैदा हुई, यहीं मैंने पहली बार सुनाया था। हमेशा की तरह नशिस्त सुनने गया था। यहाँ क़व्वाल किशन बेताब भी मौजूद थे, जिनको मैंने शेर सुना रखे थे। वो मालवा मिल में रहते थे और मैं भी। उन्होंने मेरा नाम आगे कर दिया, कहा ये भी शेर कहते हैं। चूँकि किशन बेताब ने कहा था इसलिए फ़ौरन मेरा नाम फ़ेहरिस्त में जुड़ गया, सुनाया भी। सुनने के बाद सबका यही कहना था कि मेरे शेर नहीं है, कहीं से लिखवाकर लाया हूँ। कोई मान नहीं रहा था, सबको लग रहा था कोई नया ऐसा नहीं कह सकता है। वजह हमारे यहां 1960-65 तक रोमांटिक शायरी छायी हुई थी और मेरी शायरी में रोमांस नहीं था।

क़ैसर इन्दौरी, नश्तर इन्दौरी ने लहजा तब्दील किया। इन्होंने बताया कि ग़ज़ल में नारा भी हो सकता है, एहतजाज भी हो सकता है, आम आदमी की आवाज़ भी शामिल की जा सकती है, हड़ताल भी ग़ज़ल का हिस्सा हो सकती है। क्योंकि दोनों मिल मज़दूर थे और मज़दूरों की आवाज़ को ग़ज़ल में शामिल करते थे, हालाँकि मैं न तो क़ैसर इन्दौरी को जानता था, न ही नश्तर इन्दौरी से कभी मिला था। मेरी जो ग़ज़ल थी, वो थी रोमांटिक, पर लहजा इन्दौरी नहीं था। इस बदलाव की वजह साहिर थे; जिन्हें मैंने ख़ूब पढ़ा और वही लहजा लोगों के सामने था। इसी वजह से सुनने वालों को लगा कि मैं कहीं से लिखवाकर लाया हूँ। इस तरह के अंदेशों को धुलने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगा और सबने क़ुबूल कर लिया कि जो सुनाता है, इसका अपना होता है। ब़ज्म-ए-अदब लाइब्रेरी में मैंने क्या पढ़ा, याद नहीं, पर हाँ, ये शेर याद है-

मुक़ाबिल आइना है और तेरी गुलकारियाँ जैसे
सिपाही कर रहा हो जंग की तैयारियाँ जैसे

राहत इंदौरी का अब रानीपुरा जाना नहीं होता। जिसके लिए जाते थे, वो बचे नहीं हैं। ब़ज्म-ए-अदब की शमाँ भी तक़रीबन बुझ ही गयी है। जहाँ से रोशनी आती थी, वहाँ अब धुआँ है, कभी-कभार कोई नशिस्त हो जाती है। राहत इंदौरी कहते हैं- "मेरे लिए वो जगह ख़ास है और मैं हमेशा वहाँ जाना चाहता हूँ, पर ऐसा कुछ बचा ही नहीं है, जिसकी वजह से वहाँ का सफ़र किया जाए।"

इंदौर के शायर नसीर अंसारी बताते हैं- जिस ब़ज्म-ए-अदब लायब्रेरी की नशिस्त से राहत इंदौरी ने शुरूआत की, उसमें मैं मौजूद था। जब वो आये, लगा नही, शेर कहेंगे, क्योंकि पहले कभी देखा नहों था। फिर रंग-ढंग भी शायरों वाले नहीं थे। पीछे बैठ गये। क़ैसर इंदौरी को उन्होंने अपनी ग़ज़ल दिखायी। रौनक़ इंदौरी, नश्तर इंदौरी भी थे। तभी राहत क़ैसरी का नाम लिया गया। शुरूआत उन्होंने इसी नाम से की। राहत क़ुरैशी थे, क़ैसरी इसलिए लगा लिया कि क़ैसर इंदौरी उनके उस्ताद थे। पर ज़्यादा दिन उनके शागिर्द रहे नहीं। चार-छह ग़ज़लें ही दिखायी होंगी। वैसे भी क़ैसर इंदौरी बहुत ज़्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे और जिस तेवर की शायरी राहत इंदौरी करते थे, उन्हें सँभाल पाना उनके बस में नहीं था। मुझे नहीं पता लगता फिर किसी को उन्होंने ग़ज़ल दिखायी हो। खैर, राहत इंदौरी ने तरन्नुम में ग़ज़ल सुनायी। दाद भी मिली। बस यहीं उन्हें पहली बार देखा था। उसके बाद सिलसिला शुरू हो गया। ब़ज्म-ए-अदब की हर महीने नशिस्त होती थी, उसमें राहत इंदौरी का आना शुरू हो गया। सालाना मुशायरा होता था, जो उर्दू मैदान में किया जाता था, वहाँ भी उन्होंने पढ़ा। फिर उनसे मुलाक़ात होने लगी, दोस्ती हो गयी। रानीपुरा में सभी शायर आते थे, पर जिस ऱफ्तार से राहत इंदौरी ने कामयाबी की सीढ़ियाँ चढ़ी, पहले इस शहर में देखी नहीं गयी।

जो तुम कहोगे तुम्हारा होगा

बस एक बार शेर पढ़ता और याद हो जाता

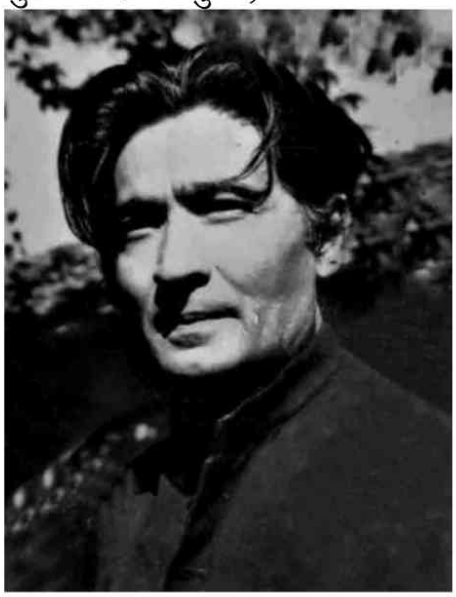


राहत मियाँ

कहते हैं अपना शेर कहने से पहले दूसरों के शेर याद करना ज़रूरी है और जिन्हें दूसरों के शेर याद होते हैं, फिर उनके शेर दूसरे याद रखते हैं। राहत इन्दौरी ने जब अपनी ग़ज़ल बुनना शुरू की, उससे पहले उनके ज़हन में इन्तेख़ाब समा चुका था। उन दिनों जो भी किताबें शायरी के साथ आती थीं, सब राहत इन्दौरी के पास होती थीं। उन किताबों का ज़िक्र करते हुए कहते हैं- "शमाँ सहित जो भी किताबें थीं, सब पढ़ता था और उसमें छपे शेर एक बार पढ़ने में याद हो जाते थे; फिर ज़हन से ओझल नहीं होते और देखते ही देखते मेरा ज़हन लाइब्रेरी बन गया था। शकील बदायूनी और साहिर लुधियानवी को मैंने रट लिया था। कुछ कह भी लिया था, पर सुनाने की हिम्मत नहीं थी। इंदौर में क़व्वाल होते थे चंदु ज्ञानी, उनको मैंने अपनी ग़ज़ल पढ़ने को दी थी और उन्होंने जब पढ़ी तो ख़ुशी का ठिकाना नहीं था।"

इंदौर में हुकुमचंद आईना क़व्वाल हुआ करते थे। एक बार उन्हें ढूँढ़ा... पुल के किनारे बदहाली में मिले। बातचीत हुई। ज़िक्र राहत इंदौरी का निकला तो कान पकड़कर खड़े हो गये, कहने लगे, वो हमारे शहर की शान हैं, मैं उनको शुरू से जानता हूँ, जब उन्होंने कहना शुरू किया था; मुझे भी अपनी ग़ज़ल पढ़ने को दी थी, लेकिन तब मैं शोहरत के नशे में चूर था, ज़्यादा ध्यान नहीं दिया; अब दुनिया का हर क़व्वाल राहत इंदौरी

को पढ़ना चाहता है, उनसे कुछ लिखवाने की हसरत रखता है... उनके कलाम से न सिर्फ़ शोहरत हासिल कर रहा है, दौलत भी कमा रहा है।
राहत इंदौरी कहते हैं- "इन्हीं दिनों इस्लामिया करीमिया कॉलेज में जाँ-निसार अख़्तर का आना हुआ और मैं उन्हें पसंद करता था। मुझे सिर्फ़ उनकी शायरी नहीं सुनना थी, उनका ऑटोग्राफ भी चाहिए था। जैसे ही मुशायरा ख़त्म हुआ, मैं



जाँ निसार अ़ख्तर

भीड़ चीरता हुआ उनके क़रीब पहुँच गया। ऑटोग्राफ की इल्तिजा की और साथ ही कह दिया कि अपना कोई शेर लिख दीजिएगा।"

उन्होंने मिसरा लिखा-

हमसे भागा न करो दूर ग़ज़ालों की तरह

और दूसरा मिसरा मेरे मुँह से निकल गया-

हमने चाहा है तुम्हें चाहने वालों की तरह

वो बड़े ख़ुश हुए। मौक़े को देखकर मैंने भी बात बढ़ायी और कहा- मैं भी लिखता हूँ। जाँनिसार साहब बोले, शायर बनना है तो पहले दूसरों के पाँच हज़ार शेर याद करो। मैंने कहा- इतने मुझे याद हैं। फिर तुम शायर हो, अब जो तुम कहोगे, तुम्हारा होगा। उसके बाद जो मैंने कहा, मेरा ही रहा। जाँ-निसार साहब से मिली दाद आज भी मेरे पास मेहफ़ूज़ है और मेरी रहनुमाई करती रहती है। दोस्त अरविंद मंडलोई कहते हैं-"जब मैनें इसका जिक्र जाँ-निसार अख़्तर के बेटे जावेद अख़्तर से किया तो उन्होंने कहा- बात सच है मेरे वालीद ने इस तरह की नसीहत मुझे भी दी थी"

नूर इंदौरी ने किया लॉन्च

ख़ुमार बाराबँकवी, कृष्णबिहारी 'नूर' और शमीम जयपुरी ने कहा–
तुम्हारी शायरी तरन्नुम की मोहताज नहीं है



परिवार के साथ 'राहत' के कुछ पल

सिर्फ़ फ़िल्म और सियासत में ही जोड़ियाँ नहीं रही हैं, मुशायरों में भी जोड़ियों ने कमाल किया है। इसमें एक जोड़ी नूर इन्दौरी और राहत इन्दौरी की थी। इससे इनकार नहीं, राहत इन्दौरी से पहले नूर इन्दौरी ही ऐसे थे, जिन्होंने इन्दौर को दूर तक पहुँचाया। अब वो नहीं हैं, पर उनकी आवाज़ ज़िन्दा है। शायद ही कोई ऐसा ख़ित्ता हो, जहाँ नूर इन्दौरी की आवाज़ न पहुँची हो। इस आवाज़ से सब वाक़िफ़ हैं। राहत इन्दौरी के शायराना सफ़र में नूर इन्दौरी का ज़िक्र राहत भरा है। बिना नूर के राहत को मुकम्मल नहीं किया जा सकता, क्योंकि मज़बूत साथ रहा है, ऐसा साथ जो सिर्फ मुशायरों तक नहीं था, दिल का साथ था... बिना नूर इन्दौरी के राहत इन्दौरी का सफ़र हो नहीं पाता था। नूर इंदौरी ने राहत के सामने जो शमाँ रखी थी, उसमें उन्होंने इज़ाफ़ा ही किया है, लेकिन राहत इंदौरी इस शमाँ को किसके सामने रखेंगे, इसका इंतज़ार है, क्योंकि नूर से राहत तक का सफ़र तो हो गया, पर राहत से आगे कुछ दिखायी नहीं देता है। ख़ैर, नूर इंदौरी को क़ुबूल करने में राहत इन्दौरी ज़रा वक़्त नहीं लगाते और कहते हैं- "नूर साहब ने मेरी ख़ूब मदद की, सिफ़ारिश भी की। जहाँ जाते, साथ ले जाते। जो उनके इलाक़े थे, जहाँ उन्हें सुना जाता था, हर उस जगह वो मुझे लेकर गये हैं। मेरे हमदर्द दोस्त थे, मेरे बड़े भाई थे। जब मेरी शादी हुई, वही खड़े थे, उन्होंने ही सब किया। मैं उन्हें अपनी ज़िंदगी से निकाल नहीं सकता। जो पेवस्त हो जाए, वो निकला नहीं करता।

नूर इन्दौरी से मेरी पहली मुलाक़ात उन दिनों हुई, जब मैं देवास की नाकामी ओढ़ चुका था और वो आसानी से पीछा नहीं छोड़ रही थी। कई महीने या यूँ कह लीजिए कई बरस कोई मुशायरा नहीं पढ़ा और पढ़ भी कैसे सकता था... हिम्मत ही नहीं हुई। पर ये ऐसी बीमारी है जो आसानी

से जाती नहीं, अदबी अखाड़ों में जाना जारी रहा। क़ैसर साहब की सोहबत थी, वहीं बैठा करते थे और यहाँ इन्दौर के सभी शायर आते थे। बस इन्हीं दिनों मेरी मुलाक़ात नूर इन्दौरी से हुई। काशिफ़ इन्दौरी और मुज़्तर इन्दौरी के बाद अगर इन्दौर की किसी आवाज़ को मुल्क में पसंद किया जाता था वो नूर इन्दौरी थे। उनका नूर मुशायरों पर ख़ूब बरसा। उनकी आवाज़ मुशायरों की कामयाबी मानी जाती थी, बड़े हिट थे, जब पढ़ते थे तो रोशनी की लकीर बना देते थे।



कृष्ण बिहारी 'नूर' और राहत इंदौरी

उस ज़माने में भुसावल में मुशायरा हुआ। मैं तरन्नुम में पढ़ा करता था। इस मुशायरे में वक़्त के सारे बड़े शायर मौजूद थे। ख़ुमार बाराबंकवी, कृष्णबिहारी 'नूर', शमीम जयपुरी थे ही... और भी नाम थे। मेरे पढ़ने की बारी आयी। मैंने तरन्नुम में ग़ज़ल पढ़ी, जिसे कुछ ख़ास दाद नहीं मिली। दूसरी ग़ज़ल का लहजा तरन्नुम वाला नहीं था, मैंने उसे तहत में प़ढ दिया। फिर क्या था, धूम थी। पहली बार मेरी झोली में दाद थी और झोली भर गयी थी। ऐसी भरी कि फिर कभी चाहने वालों ने उसे ख़ाली नहीं होने दिया। यहीं मुझे मालूम पड़ा कि शायर के लिए दाद कितनी ज़रूरी है। मुशायरे के बाद जब खाना चल रहा था, तब कृष्णबिहारी 'नूर', ख़ुमार बाराबंकवी और शमीम जयपुरी ने मुझसे कहा तुम्हारी शायरी तरन्नुम की मोहताज नहीं है, तुम तरन्नुम को छोड़ दो। बात मुझे भी समझ आयी थी। यहीं कृष्णबिहारी नूर ने मुझसे कहा मुम्बई चल रहे हो? उन्हें जाँनिसार अख़्तर को दावतनामा देने जाना था, क्योंकि लखीमपुर (उत्तर प्रदेश) में नूर साहब का जश्न था। कहने लगे चलो तुम्हें मुम्बई के शायरों से मिलवा देते हैं। मैं साथ हो लिया। उस ज़माने में मुशायरे की टीम बहुत बड़ी हुआ करती थी। बड़ी टीम में मेरा नाम भी था। कृष्ण बिहारी 'नूर' का जश्न शुरू हो गया था। बशीर बद्र इस मुशायरे की निज़ामत कर रहे थे। मैंने यहाँ भी पहली ग़ज़ल तरन्नुम में पढ़ी और दूसरी तहत से... मुशायरा धुआँ-धुआँ था। चारों तरफ़ वाह-वाह थी। जब मैं डायस से नीचे उतरा हूँ, तो आठ-दस कनविनर मुझे घेरे हुए थे। सबको

मुझसे तारीख़ चाहिए थी। तहत में क्या पढ़ा, याद नहीं, लेकिन तरन्नुम में मैंने शेर पढ़ा था-

जिन चराग़ों से तअस्सुब का धुआँ उठता है
उन चराग़ों को बुझा दो तो उजाले होंगे

इसके बाद तो सिलसिला चल निकला और फिर एक ऐसी टुकड़ी वजूद में आयी जो हर मुशायरे में होती थी और इसे मुशायरे का 'काकस' कहा जाने लगा। नाज़िर ख़य्यामी, ख़ुमार बाराबंकवी, नूर इन्दौरी, तारीक बदायूँनी और मैं... जहाँ भी मुशायरा होता हम साथ होते। उन दिनों ख़ुमार भाई के बग़ैर मुशायरे कम ही हुआ करते थे और उनके पीछे हमारा नाम भी दौड़ने लगा। ये वो वक़्त था, जब मुझे लगता था मुनीर नियाज़ी, अहमद फ़राज़, जौन एलिया और अहमद मुश्ताक़ से कब मिलना होगा। मैं इनकी शायरी की क़द्र करता था... और फिर मुलाक़ात ही नहीं हुई, दोस्ती हो गयी जो उनकी हयात तक जारी रही। नूर इन्दौरी से मेरे तब तक रिश्ते ज़िन्दा और जावेद रहे, जब तक वे साँस लेते रहे-

वो शाख़ों से जुदा होते हुए पत्तों पे हंसते थे
बड़े ज़िंदा नज़र थे, जिनको मर जाने की जल्दी थी

उनके साथ गुज़ारा वक़्त भूला नहीं जा सकता। मज़ेदार आदमी थे। कई दिलचस्प क़िस्से भी हैं, क्योंकि बहुत आसान थे; पर उन्हें मैं बाँटता नहीं हूँ। हाँ ये ज़रूर कहूँगा नूर इन्दौरी जैसी आवाज़ कभी-कभार ही सुनायी देती है और इन्दौर में तो उनके बाद आवाज़ से रोशनी बिखेरने वाला कोई आया ही नहीं।

मेरी दिल्ली मेरा रानीपुरा है

पटियों की जो रिवायत दिल्ली जामा मस्जिद के
क़रीब हुआ करती थी, वही इंदौर रानीपुरा में भी थी



रानीपुरा के कुछ शौरा

राहत इन्दौरी की ज़िन्दगी में जब आप दाख़िल होते हैं तो जो पहला टापू आता है, उस पर रानीपुरा की तख़्ती लगी होती है। ठहरे बग़ैर सफ़र पूरा नहीं किया जा सकता... वजह- राहत इन्दौरी का बड़ा वक़्त गुज़रा है, यहाँ शायराना सोहबत हासिल की और फिर उनकी सोहबत में भी कई खड़े दिखायी दिये।

रानीपुरा की अपनी अदबी तारीख़ है, जिसे इन्दौर के कई शायर आगे बढ़ाते हैं। इस इलाक़े को अगर अदब का मरकज़ कहा जाए ग़लत नहीं होगा। हालाँकि अब ऐसा कुछ रहा नहीं है। अब तो बेअदबी है... न शायर है, न उस्ताद, न शार्गिद, न मिसरे, न बहस और न ही अदबी शरारतें। जब राहत इन्दौरी के सामने रानीपुरा लाया जाता है, आँखों में चमक आ जाती है। उस्ताद दिखायी देने लगते हैं, सत्तार शाद भी घूमने लगता है। ग़नी मास्टर करीब से गुज़र जाते हैं, नशिस्त की आवाज़ आने लगती है और वो बहस पुकारने लगती है, जो घण्टों सिर्फ़ एक मिसरे पर हुआ करती थी। रानीपुरा को लेकर राहत इन्दौरी में अगर संजीदगी दिखायी देती है, तो शरारत को भी छुपा नहीं पाते हैं। यहाँ के पटियों पर उन्होंने अगर अदबी ग़ुफ्तगू की है तो उस रस्मी रस्सी को भी लम्बा किया है, जिसमें मज़ाक़ है, तंज़ है, मज़ा है।

कहने लगे- "रानीपुरा की यही ख़ासियत रही है यहाँ अगर संजीदा अदब वजूद में रहा तो अदबी शरारतें भी कम नहीं हुई हैं। मैं जब भी दिल्ली जाया करता तो वहाँ के शायर दोस्त और अदीब मुझसे कहते आप दिल्ली ही आ जाइए, ग़ालिब से लेकर जितने शायर हुए हैं, सबने दिल्ली को पसंद किया है, अदब का मरकज़ है, यहाँ रहकर आप ज़्यादा ख़िदमत कर सकते हैं, दूर तक पहुँच सकते हैं। ऐसी बात मुझसे अक्सर कही जाती थी, लेकिन मेरे लिए इंदौर छोड़ना कभी आसान नहीं रहा। जब मुझे दिल्ली में कोई इस तरह की बातें कहता, तब मैं उन्हें शेर सुना देता था-

सुख़नवर ओटलों पर बैठते हैं
मेरी दिल्ली मेरा रानीपुरा है

वैसे मैंने ये शेर भी कहा है-

इक इम्तेहान है रानीपुरा में रहना भी
ज़रा सा चूके तो 'सत्तार शाद' हो जाएँ

एक ही इलाक़े पर इस तरह के दो शेर सवाल करने पर मजबूर कर देते हैं। राहत इन्दौरी का जवाब होता है- "मैं सिर्फ़ पहले की बात नहीं कर रहा, अभी भी रानीपुरा दो तरह का है, कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें देखकर ही इ़ज्ज़त करने को जी चाहता है, जैसे मुफ्ती वलीउल्लाह साहब। अगर निकलते हैं अपने आप सलाम निकल जाता है, कुछ ऐसे भी हैं जो गुज़रते हैं तो कुछ न कुछ ज़रूर निकलता है। रानीपुरा इसलिए ख़ास है कि यहीं मैंने अपनी पहली नशिस्त पढ़ी थी। जिस तरह की अदबी अड्डेबाजी रानीपुरा में हुआ करती थी, वैसी महफ़िलें मुल्क के कई शहरों में दिखायी देती थीं।"

दिल्ली जामा मस्जिद के किनारे बड़े-बड़े शायर बैठते थे। यही हाल भोपाल के पटियों का रहा है जहाँ कैफ़ भोपाली, शेरी भोपाली रात गुज़ारा करते थे। रानीपुरा में भी सारे शायर आते थे, इस पार, उस पार दोनों पार के और अदबी ग़ुफ्तगू होती थी, शायरी होती थी, समझ वसीअ की जाती थी। अब न वो लोग बचे हैं, न ही पटिये ज़िन्दा हैं। जब लोग ख़त्म हो गये तो पटिये टूटना ही थे। रानीपुरा का ज़िक्र होता है तो ब़ज्म-ए-अदब लाइब्रेरी दिखायी देती है। मुफ्ती वलीउल्लाह साहब सामने घूमने लगते हैं और ग़नी मास्टर भी दिख ही जाते हैं। राहत इन्दौरी भी उन्हें भूल नहीं पाए हैं।

कहते हैं- "दिलचस्प आदमी थे, शायरों के दोस्त और ऐसे दोस्त थे जो उन्हें छीलने का कोई मौक़ा छोड़ते नहीं थे। नश्तर इन्दौरी के बेटे की शादी था, उसमें मुशायरा था। इन्दौर के सभी शायर थे। सुनने वालों में हमेशा की तरह ग़नी मास्टर बैठे थे। चमकीली शेरवानी में सादिक़ इन्दौरी ने ग़ज़ल पढ़ी, जो मुश्किल थी, यानी दक़ीक़ उर्दू का इस्तेमाल किया था। कुछ देर तो ग़नी मास्टर सुनते रहे, उसके बाद उठकर जाने लगे। इस

अंदाज़ में उठे कि सब उनकी तरफ़ मुतवज्जे हुए। सादिक़ इन्दौरी ने तो पूछ ही लिया, गनी मियाँ कहाँ चल दिये। चेहरे पर शरारत बिखेरते हुए ग़नी मास्टर ने जवाब दिया- डिक्शनरी लेने जा रहा हूँ। इस तरह उनके कई क़िस्से थे। ब्लैक एण्ड व्हाइट टीवी का दौर था। मैं पहली बार टीवी पर आया था। कोई मुशायरा दिखाया गया था, जिसकी इन्दौर में ख़ूब चर्चा थी। शहर वाले ख़ुश थे, मुबारकबाद दे रहे थे और मुबारकबाद देने ग़नी मास्टर भी आ गये। मैं रानीपुरा में ही था। टीवी पर जो मुशायरा आया था, उसमें मैंने जो ब्लेज़र पहना था, वही पहनकर बैठा था। ग़नी मास्टर क़रीब आये। ने मेरी शायरी की तारीफ़ की, सीधे बोले- यही ब्लेज़र पहनकर तुम टीवी पर आये थे न! फिर ब्लेज़र कई दिन तक चलता रहा। बहुत हसीन वक़्त था, जो अब लौटकर नहीं आयेगा-

ज़िदगी भी काश मेरे साथ रहती उम्र भर
ख़ैर अब जैसी भी होनी है बसर हो जाएगी

अब ग़नी मास्टर को अहमद निसार आगे बढ़ाते हैं, कहते हैं- "राहत साहब के साथ मैं और मंज़र भोपाली पटिये पर बैठे थे। मस्ती चल रही थी, राहत साहब ने सभी शायरों को रानीपुरा से वाक़िफ़ करा रखा था, सिर्फ़ रानीपुरा से ही नहीं, ग़नी भाई से भी। सभी उन्हें जानते थे, क्योंकि जब भी मुशायरा पढ़ने आते, मास्टर से मिल ही लेते थे। हम लोग बैठे थे, तभी ग़नी भाई का उधर से ग़ुजरना हुआ। राहत साहब ने आवाज़ लगाकर बुलाया और कहा कि हमारे साथ मंज़र भोपाली बैठे हैं, मुल्क



राहत साहब

के बड़े शायर हैं, बहुत अच्छा पढ़ते हैं, इनकी कुछ फ़िक्र कीजिए, इनके लिए कुछ कीजिए, हमारे शहर में आये हैं। ग़नी मास्टर ने राहत साहब की तरफ़ देखा और जेब में से दो रोटी निकालकर उनके हाथ में रख दी। कहा पकड़, बाक़ी का इंतज़ाम और करता हूँ। हमारी हँसी का ठिकाना नहीं था। अचानक जेब से रोटी कैसे निकली, जानने की बैचेनी रही।

दूसरे दिन ग़नी मास्टर से पूछा कहने लगे घर से रोटी लाया था, होटल जा रहा था; वहाँ से सालन लेकर खाना खा लूँगा, पर वो तो तूने छीन ली।

राहत इंदौरी के दोस्त तारिक़ शाहीन कहते हैं- "राहत और रानीपुरा का गहरा रिश्ता रहा है। पूरे मुल्क में पढ़ने के बावजूद उनका रानीपुरा आना जारी रहा और उनकी शायराना ज़िन्दगी में इस जगह को ख़ास हैसियत हासिल है। हमने यहाँ सब कुछ किया जो वक़्त गुज़ारा है, क़ीमती था, जिसे कभी भूला नहीं जा सकता। यहीं इक़बाल बापू का ठेला हुआ करता था। खोपरा पाक बेचते थे... बेचते क्या थे, बस हमारे लिए बेंच लगा देते थे। राहत इंदौरी, मैं, याक़ूब साक़ी सब यहीं होते थे। शाम का इंतज़ार रहता था। इस ठेले के पटिये पर कैफ़ भोपाली, मुनव्वर राना, वाली आसी, ताज भोपाली, शायर जमाली सहित कई शायर आये। सब इक़बाल बापू को जानते थे। मोहब्बत भरे आदमी थे। जैसे ही हम लोग जाते खोपरा पाक का थाल हमारे हवाले कर कहीं भी निकल जाते थे। हमने उनकी दुकान चलायी है। यहीं मस्ती होती थी, शायरी होती थी, मिसरे इधर-उधर किये जाते थे। रमज़ान में माहौल कुछ और हो जाता था। आiखिरी दिनों में जब भीड़ बढ़ती, हम भी मदद के लिए खड़े हो जाते थे। राहत इंदौरी ने कई बार पापड़ तले हैं, भजिये बनाये हैं। याक़ूब साक़ी लोगों को बुलाते थे, आवाज़ लगाते थे- गर्म है आ जाइए, क़तार में आइए...! खूब मस्ती की है। कभी किसी से बेतमीज़ी नहीं की और न कभी कोई झगड़ा हुआ। राहत के आसपास ऐसे भी होते थे जिनसे उनका मज़ाक़ होता था। इनके दिन बाँध दिये गये थे। क्या ख़ूब वक़्त था और इन्ही पटियों से राहत इंदौरी मिले हैं।

अहमद निसार कहतें है- राहत साहब के पास स्कूटर हुआ करती थी और अक्सर पीछे वाली सीट पर मैं बैठा होता था। जुमा के दिन वो रानीपुरा आ रहे थे। जुनी कोतवाली पर पुलिस ने उनकी गाड़ी रोक ली। लाइसेंस और दूसरे काग़ज़ माँगे, जो नहीं थे। राहत साहब ने कहा जुमा की नमाज़ को जा रहा हूँ, अभी कुछ नही है, पर पुलिस नहीं मानी वो गाड़ी छोड़कर ही रानीपुरा आ गये। नमाज़ में उनका हाथ शुरू से तंग रहा है। ख़ैर, भाईजान नें हमें बताया और हम पहुँच गये गाड़ी लेने। सब इंस्पेक्टर को बताया आपको पता है आपने किसकी गाड़ी पकड़ी है? राहत इंदौरी की गाड़ी है। उसको हैरत हुई। बोला- "क्या सच में उनकी गाड़ी है?" हमने बताया हाँ उन्हीं की है। उसका कहना था- "अभी छोड़ दूँगा, बस एक बार उनसे मुलाक़ात करा दीजिए।" फिर हम राहत साहब को लेकर आये। इंस्पेक्टर उनसे मिलकर ख़ुश हुआ और कहा बताइए क्या ख़िदमत कर सकता हूँ। राहत साहब बोले- पहले तो गाड़ी छोड़ो और उसके बाद सिगरेट भी पिलाओ। गाड़ी तो छूटी ही, सिगरेट भी पी और पहली बार देखा कि पुलिस वाले किसी को कुछ पिला रहे थे।

आर-पार के अदबी अखाड़े

इन्दौर का अदब अगर थमा हुआ है तो उस्तादी ज़िम्मेदार है



इंदौर की एक शेरी नशिस्त

उर्दू अदब और मुशायरे इन्दौर के लिए ख़ास रहे हैं। यही वजह है, इसके पास बताने को बहुत कुछ है। ऐसे फ़नकार हैं जो शहर की नुमाइंदगी करते रहे हैं, आगे भी करते रहेंगे। कुछ अभी हैं, कुछ जा चुके हैं, पर कलाम ज़िन्दा है और वो इन्दौर के अदब को खड़ा रखेगा। लेकिन इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि धीरे-धीरे अदबी सिलसिला कमज़ोर पड़ता जा रहा है। शायरी सिमट रही है, अदब में पैबन्द आ गये हैं।

मुशायरों में फिर भी कुछ नाम नज़र आते रहे हैं, पर जिन्हें अदबी रिसालों में जगह दी जा सके, ऐसे दिखते नहीं हैं। एक तरह से सूखा है और फिर मुशायरे में भी इंदौर की नुमाइंदगी घटती जा रही है। वो आवाज़ अब सुनायी नहीं देती, जो यहाँ से निकलती थी और पूरे उर्दू अदब पर छा जाती थी। हालाँकि राहत इन्दौरी की अकेली आवाज़ ऐसी है, जिसमें वो सब है जो इज्तेमाई आवाज़ में होता है और इस आवाज़ की ख़ूबी है कि निकलती एक ज़बान से है और सबकी ज़बान बन जाती है।

राहत इन्दौरी मुशायरे के बड़े नाम हैं और उन्होंने इन्दौर को जहाँ पहुँचाया, वहाँ का सफ़र नामुमकिन नहीं, पर आसान भी नहीं हैं। आज ऐसा लगता है इन्दौर तंग है, नयी आवाज़ नहीं आ रही है, पर इसकी बिसात बरसों पहले बिछ गयी थी। वो दिन थे जब राहत इन्दौरी की आवाज़ जगह ढूँढ़ रही थी, ल़फ्ज़ गर्दिश करने लगे थे, ज़बान पलटने लगी थी, ज़हन से निकलकर लबों तक शायरी आने लगी थी और उस वक़्त इन्दौर का उर्दू अदब उस्तादों से घिरा हुआ था। उनकी चादर से सिर्फ़ शायर ही लिपटे हुए नहीं थे। उर्दू, मुशायरा और अदब भी गिऱफ्तार थे... ऐसे में नये के लिए जगह बनाना आसान नहीं था। वो दौर था जब अदब कई हिस्सों में बँट गया था। उस्तादी शबाब पर थी, चेले पैदा किये जा रहे थे और इस दौर को याद करते हुए राहत इन्दौरी ऱफ्तार पकड़ लेते हैं। उनकी ज़बान रुकने से इनकार कर देती है और वो इस उस्तादी को अखाड़ेबाजी का नाम देते हैं। हर उस्ताद का अपना अखाड़ा, अपने

चेले, अपनी ढपला... अपना राग था। शायरी तीन-चार हिस्सों में बँट गयी थी और हर हिस्से पर एक उस्ताद शायर खड़ा हुआ था।

राहत इन्दौरी कहते हैं- "जब ज़हन में शेर आने लगे, ल़फ्ज़ पेंच लड़ाने लगे, तब इन्दौरी अदब अखाड़ों में तब्दील हो चुका था। हर उस्ताद का अपना अखाड़ा था। इन्दौर को चीरकर जो नाला बहता है उसे उस वक़्त नदी कहा जाता था और



नशिस्त में कलाम पढ़ते हुए

इसने इन्दौर को दो हिस्सों में बाँट रखा था। इस बँटवारे से शायरी भी नहीं बच पायी थी। नदी पार की शायरी अलग थी। वो हिस्सा था, जो पुराने इन्दौर का था, जैसे बॉम्बे बाज़ार इसी हिस्से में आता था। नदी के इस पार यानी रानीपुरा वाला हिस्सा। इस पार और उस पार ने शायरी को पार लगा दिया था। इसका मैंने अनवर सादिक़ी के लिए इस्तेमाल भी किया है। लिखा है, वो इस पार और उस पार दोनों के शायर हैं। मुझे कहने में कोई झिझक नहीं कि नयी सोच, नया ख़याल उस पार था, वहाँ पर जो शायरी होती थी, उसमें समझ-शऊर के साथ तालीम दिखायी देती थी, पढ़ा-लिखा माहौल भी उधर ज़्यादा था। मेरी इस बात से कुछ लोग नाराज़ हो सकते हैं, पर सच यही है। उस पार के उस्ताद शायर ताबाँ इन्दौरी, शादाँ इन्दौरी, शरीफ़ इन्दौरी सब इस पार के शायरों से बेहतर शायरी करते थे। इनका ख़याल भी इस पार से बेहतर था। शादा साहब का ज़िक्र ख़ासतौर पर किया जा सकता है जिनका अदबी स्कूल अच्छा था।

इस पार क़ैसर साहब और नश्तर इन्दौरी थे, जिनके खूब पट्ठे थे, पट्ठेबाजी होती थी। पट्ठे लड़ते भी खूब थे, लड़ने से मतलब शायराना लड़ाई। अखाड़े यूँ ही तो खड़े नहीं थे। जब तक लड़ाई न हो, ल़फ्ज़ों की पतंग न उड़ायी जाए, अखाड़ेबाजी कैसे मुकम्मल हो सकती है। इसी अखाड़ेबाजी ने शायरी को नुकसान पहुँचाया। इन्दौर का अदब रुक गया। इस रुकावट को आज भी महसूस किया जाता है। हालाँकि अब इस पार और उस पार का खेल ख़त्म हो चुका है... अब तो किसी पार कोई शायरी नहीं है, इस सबके बावजूद मैं कहूँगा कि मुझे कभी किसी ने नहीं रोका, सबने हौसला अफ़ज़ाई की और इन्दौर हमेशा से नयी आवाज़ का

क़द्रदान रहा है। चूँकि इन्दौर से अब उस्तादी विदा हो चुकी है; पुराने लोग बचे नहीं हैं, नये उनकी जगह नहीं ले पाये हैं। अब सबकुछ जा चुका है... फिर भी उम्मीद रखनी होगी।"

आँखों ने कभी मील का पत्थर नहीं देखा

जो कैनवास पर ब्रश से तस्वीर बना सकता है
वो काग़ज़ पर ल़फ्ज़ों से ग़ज़ल भी बना सकता है



अदब नवा़ज राहत साहब

शेर कहना कमाल है, सुनाना भी कमाल है और जब इस तरह के कमाल करने वालों को एक जगह किया जाता है, तो राहत इन्दौरी आगे खड़े दिखायी देते हैं। मुशायरे के माइक का मनचाहा इस्तेमाल करते हैं। सिर्फ़ अच्छे शेर नहीं कहते, जुमले भी कमाल के छोड़ते हैं और जिसे हाज़िरजवाबी कहा जाता है उसमें उनका कोई मुक़ाबला नहीं है। बिगड़ैल से बिगड़ैल सार्मइन भी उनके सामने ख़ामोश रहते हैं। जब-जब भी किसी ने कुछ बोलने की कोशिश की है, जवाब ऐसा मिला फिर बोल नहीं पाया। जो बीच में बोल देते हैं, तंज़ कर देते हैं, उनके लिए राहत इन्दौरी का जुमला अक्सर सामने आता है- जहाँ तुम हो, वहाँ पहुँचने में मुझे दो मिनट नहीं लगेंगे, लेकिन जहाँ मैं हूँ, वहाँ पहुँचने के लिए पचास साल का सफ़र करना होगा।

अनवर जलालपुरी सही कहते हैं- "जितना राहत इन्दौरी ने पढ़ा, उतना पढ़ने के लिए डेढ़ सौ साल की उम्र चाहिए और उसे ह़ज्म करने के लिए पचास साल अलग से जोड़ लीजिए।" ये कामयाब सफ़र यूँ ही तय नहीं हो गया है, मंज़िल यूँ ही क़दमों में नहीं आ गयी, इसके पीछे क़ुर्बानियों का सिलसिला है, मेहनत है, मुताअला है और लगातार वो सफ़र है, जिसने राहत इन्दौरी को ऐसा मुसाफ़िर बना दिया जिसके पैरों में आराम नहीं था। आख़िर इस लम्बे सफ़र की शुरूआत कैसे हुई, कहाँ-कहाँ से होता हुआ मंज़िल पर पहुँचा, कामयाबी कैसे क़दमों तक आयी। कब क़ाफ़िए ज़हन में आराम करने लगे, कब ख़याल से चिपककर वो ग़ज़ल बनकर निकलने लगे।

राहत इन्दौरी इसके जवाब में बच्चे हो जाते हैं, यानी बचपन में दाख़िल हो जाते हैं। जब-जब भी उन्हें पीछे ले जाया जाता है, उनका बचपन सामने आ जाता है। कहते हैं- "शुरूआती पढ़ायी उर्दू मीडियम से हुई। जब आप उर्दू के साथ होते हैं तो शायरी के पास हो जाते हैं। जब तालीम आगे बढ़ी, नस्र और ऩज्म उसमें शामिल हो गयी, जिसने मुझे ग़ज़ल के क़रीब कर



शेर सुनाते हुए राहत इंदौरी

दिया। देखते ही देखते शायरी का शौक़ हो गया... पेंटर मैं था ही। मुझे लगता है अगर आप कैनवास पर ब्रश से तस्वीर बनाते हैं तो काग़ज़ पर ग़ज़ल भी बना सकते हैं। मुझे पता नहीं चला, कब मेरे पेंटर को मेरे राइटर ने ओवरटेक कर लिया और ऐसा ओवरटेक किया कि कभी पीछे हुआ ही नहीं। बस मैं मिसरे जोड़ने लग गया था, पर जानता नहीं था शायरी क्या है। लेकिन कोई आवाज़ थी, जो बार-बार मुझे बुला रही थी और मैं खिंचा चला जा रहा था।

टूटी-फूटी शायरी शुरू हो गयी थी। जो भी था, मैं अज़ीज़ इन्दौरी के पास लेकर पहुँच गया। वो हमारे कॉलेज में प्रोफेसर थे। उन्होंने मुझे पढ़ाया भी और मुझे क़ुबूल है कि वही मेरे पहले उस्ताद थे। उस वक़्त उस्तादों की बहुत इ़ज्ज़त थी। एक बार प्रोफ़ेसर हलीम जो मेरे उस्ताद नहीं थे, पर मेरे कॉलेज में ही सोश्योलॉजी पढ़ाते थे। उस ज़माने में मैंने सिगरेट पीना शुरू कर दिया था। मैं धुआँ उड़ा रहा था, तभी प्रोफ़ेसर हलीम आ गये। मैंने जलती हुई सिगरेट मुट्ठी में बंद कर ली और कहानी, नहीं सच है। ख़ैर, जब मैं अज़ीज़ इन्दौरी साहब के पास पहुँचा तो वो कॉलेज की सीढ़ियाँ उतर रहे थे। मैं सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। मैंने आजिज़ी के साथ उनके हाथ में काग़ज़ दिया, कहा- मैं भी लिखने लगा हूँ। उन्होंने मुझे देखा, मुस्कराये और चले गये। दूसरे दिन फिर मैंने उनसे इल्तिजा की तो उन्होंने शाम को रानीपुरा आने का कहा। मैं वक़्त से पहले पहुँच गया। यहाँ मेरी अज़ीज़ इन्दौरी ने क़ैसर इन्दौरी से मुलाक़ात करायी। उन्हें बताया हमारे कॉलेज में हैं और कहने लगे हैं, अगर आपकी सरपरस्ती मिल गयी तो निखर जाएँगे।

मैं कुछ दिन तक क़ैसर साहब को ग़ज़ल देता रहा और उन्होंने मुझसे कहा, जब बीस ग़ज़ल हो जाएँ तो उन्हें कुएँ में डालकर आ जाना, फिर बीस कहना और उसे भी कुएँ में डाल देना। इस बीच मेरी काशिफ़ इन्दौरी से मुलाक़ात होने लगी। वो मुझे मुशायरा पढ़ने के लिए जावरा ले गये। लौटने के बाद उस्ताद क़ैसर इन्दौरी से कहा- "राहत को तुम आज़ाद कर दो, इसकी परवाज़ क़ैद नहीं हो सकती। उस्ताद के सामने काशिफ़ इन्दौरी का बड़ा जुमला था, जिसे वो ख़ामोशी से सुन गये। उसके बाद मेरे लिए आज़ादी थी और फिर कभी किसी को ग़ज़ल दिखाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। कई बार ऐसा हुआ कि मैंने पूरी ग़ज़ल कह दी, लेकिन मैं किसी अशआर को लेकर कशमकश करता रहा कि क्या मेरे ही हैं। मिसाल के लिए मेरी वो ग़ज़ल ले लीजिए जिसे जगजीत सिंह ने गाया भी है-

दोस्ती जब किसी से की जाए
दुश्मनों की भी राय ली जाए

इसमें एक शेर है-

आज बरसी है आशियाने की
सारे गुलशन में रौशनी की जाए

किताब छपने चली गयी थी। मेरी बेचैनी नहीं गयी। मुझे ऐसा लग रहा था, ये शेर तो शादाँ इन्दौरी का है। मैंने उसकी तहक़ीक़ात की। सबने यही कहा कि हमने कभी शादाँ साहब से नहीं सुना। फिर मैं अपने मोहसिन काशिफ़ इन्दौरी से मिला। उन्होंने जो जवाब दिया उससे मैं मुतमईन था। कहने लगे- कभी-कभी ऐसा होता है कि आप अपनी सोच से कुछ ऊपर हो जाते हैं और ख़याल का दायरा भी सरहद लाँघ जाता है।" राहत इन्दौरी के सफ़र पर नज़र डालते हैं तो बशीर बद्र का शेर सामने आ जाता है-

जिस दिन से चला हूँ, मेरी मंज़िल पे नज़र है
आँखों ने कभी मील का पत्थर नहीं देखा

अल्लामा इक़बाल का शेर है-

उक़ाबी रूह जब बेदार होती है जवानों में
नज़र आती है उनको अपनी मंज़िल आसमानों में

पत्थरों को तराशते हुए राहत इन्दौरी मंज़िल तक पहुँचे हैं और उनका शेर भी है-

ये क्या उठाये क़दम और आ गई मंज़िल
मज़ा तो जब है कि पैरों में कुछ थकान रहे

जब राहत इंदौरी ने सफ़र शुरू किया, तब मुशायरे का डायस नामचीन शोअरा से चमक रहा था, अदब की बागडोर म़ज्बूत कंधों पर थी, उस्ताद शायरों के साथ बेहतरीन सामईन से मुशायरा सुर्ख़रू था। इस चमक में जगह बनाना आसान न था, लेकिन जो रास्ता न बना पाये, राहत इंदौरी नहीं हो सकता। सख़्त मैदान में भी उन्होंने अपने लिए जगह बनायी और उस मंज़िल को छू लिया, जो कम को मयस्सर है। राहत इंदौरी कहते हैं फ़नकार और बेवक़ूफ़ बनाये नहीं जाते, बने-बनाये आते हैं। ख़ुदा की नेमत है, उसमें किसी का कोई दख़ल नहीं है। अगर कोई शायर बनने की कोशिश करे तो उसे कोई बना नहीं सकता है, जब तक उसमें क़ुदरत का शायर मौजूद न हो। इसके बाद भी ख़ुद को हर मक़ाम पर तराशना पड़ता है क्योंकि राह मिलती नहीं, निकालना होती है-

रिवायतों की सफ़ें तोड़कर बढ़ो वरना
जो तुमसे आगे हैं वो रास्ता नहीं देंगे

अपने रस्ते बनाये ख़ुद मैंने
मेरे रस्ते से हट गई दुनिया

अब राहत इंदौरी वहाँ पहुँच गये हैं, जहाँ पहुँचने की हसरत हर नया शायर रखता है और उनकी नक़ल करने वाले भी कम नहीं हैं। जब अंदाज़ नक़ल में आने लगे तो इसे भी कामयाबी ही कहते हैं। पर क्या नक़ल से नये राहत इंदौरी को देखा जा सकता है? हाँ, इससे सुर्ख़ियाँ कमायी जा सकती हैं और रोटी भी।
तेरी बर्बादी का ज़िक्र है

सौ फ़ीसद रिज़ल्ट का पाँच फ़ीसद नतीजा आया



इस्लामिया करीमिया कॉलेज की एक तस्वीर

इन्दौर के पुराने मुसलमानों की पीठ अगर देखी जाए तो इस्लामिया करीमिया गुदा मिल जाएगा, क्योंकि कई नस्लों का तालीमी मरकज़ रहा है और राहत इन्दौरी के लिए ख़ास है। वजह, यहाँ उन्होंने सिर्फ़ तालीम

हासिल नहीं की, तालीम दी भी, प्रोफ़ेसर रहे हैं। उनका यही तालीमी मरकज़ आज अपनी बदहाली पर आँसू बहा रहा है और कोई पोंछने वाला नहीं है।

नये किरदार आते जा रहे हैं
मगर नाटक पुराना चल रहा है

जिस इस्लामिया करीमिया में अज़ीज़ इन्दौरी कभी उर्दू पढ़ाया करते थे, राहत इन्दौरी उनके शागिर्द हुआ करते थे। वहाँ अब 'उस्ताद-शागिर्द' की रिवायत ख़त्म हो चुकी है। ज़बान से मिठास ग़ायब है। जिन कमरों में अज़ीज़ इन्दौरी और राहत इन्दौरी के लेक्चर हुआ करते थे, वहाँ सन्नाटा है। पढ़ने वाले हैं, लेकिन सन्नाटा जाने का नाम नहीं ले रहा है। इनके पास अब सिर्फ़ यादें हैं, पर इदारा पन्ने पलटकर फ़ख्र से कह सकता है यहाँ राहत इन्दौरी ने तालीम हासिल की और तालीम दी भी है। जब राहत इन्दौरी को इस्लामिया करीमिया की तरफ़ लेकर जाया जाता है, उनकी आँखें शिकायत करती दिखायी देती हैं, क्योंकि आप कहीं पहुँच जाएँ अपने मदरसे को भूल नहीं सकते, वो भी नहीं भूल पाये हैं। ़दिव़äकत है जो ज़िम्मेदार हैं, सो नहीं रहे हैं, सोने का ढोंग कर रहे हैं। अबुल मुजाहिद ज़ाहिद का शेर है-

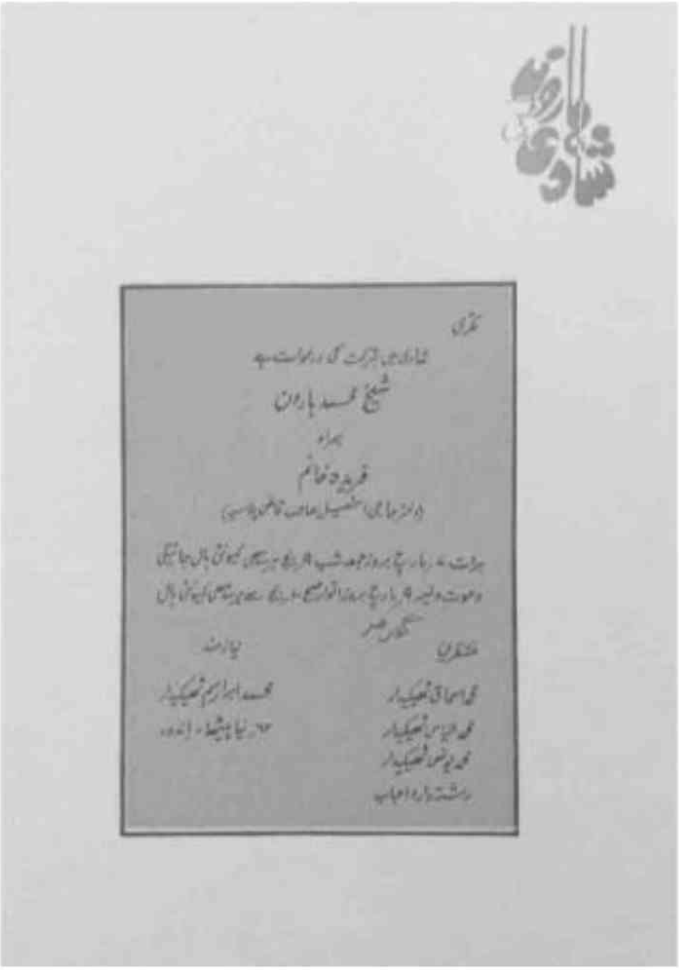
जो सोते हैं नहीं कुछ ज़िक्र उनका वो तो सोते हैं
मगर जो जागते हैं उनमें भी बेदार कितने हैं

राहत इंदौरी कहते हैं- ''इस्लामिया करीमिया को जहाँ होना था, वहाँ पहुँच नहीं पाया। जिनके पास ज़िम्मेदारी है, उन्होंने काम ठीक से नहीं किया। ऐसा नहीं है सब ग़लत हैं, पर अगर इरादा आगे नहीं बढ़ रहा है, पिछड़ रहा है तो उसके लिए ज़िम्मेदारी तय करना ज़रूरी है। इन्दौर में अगर उर्दू कमज़ोर हुई है, ज़बान ने मिठास खोयी है तो वजह इस्लामिया करीमिया का कमज़ोर होना है। अब यहाँ से कोई अदबी ख़बर आती नहीं है। ज़िम्मेदार कुछ कर नहीं रहे हैं। अफ़सोस होता है, जहाँ अच्छा वक़्त गुज़रा है, पढ़ने-पढ़ाने का सिलसिला चला है, वहाँ काग़ज़ कोरे हो गये हैं, स्याही सूख रही है।

मैंने जितने वक़्त भी पढ़ाया, ईमानदारी से पढ़ाया है, मेरी क्लास में हमेशा सौ फ़ीसद हाज़िरी रहती थी, लड़के मेरा इंतज़ार करते थे। मैं सिर्फ़ पढ़ाता नहीं था, उनके साथ बात करता था। क़िस्से होते थे, कहानियाँ होती थीं, लतीफ़े थे और अगर सब्जेक्ट में 'हाली' हैं तो मैं उन्हें सब्जेक्ट से बाहर के 'हाली' से भी मिलवाता था। अब इस्लामिया करीमिया क़िस्सा बनकर रह गया है। अज़ीज़ इन्दौरी ने अपने मज़मून में मेरी क्लास का ज़िक्र किया है। इस्लामिया करीमिया की हालत ऐसी है कि हम ही कह सकते हैं, हम ही सुन सकते हैं और हम ही रो सकते हैं। जब पढ़ाने के बजाय पास करना ज़िम्मेदारों का मक़सद हो तो फिर नस्लें

परवान नहीं चढ़ा करतीं। एमए की कॉपी जाँचने पहुँचाया जाता था, हिदायत दी जाती थी, फेल नहीं करना है। कॉपी में लिखा मिलता था- 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम... हमें पास कर देना!' और पास हो भी जाते थे। वजह उर्दू का रिज़ल्ट सौ फ़ीसद चाहिए होता था। उस सौ फ़ीसद रिज़ल्ट का नतीजा है, मुज्तर इन्दौरी, शादा इन्दौरी, काशिफ़ इन्दौरी और अज़ीज़ इन्दौरी के शहर में पाँच फ़ीसद उर्दू वाले भी नहीं हैं। इस्लामिया करीमिया को जहाँ तक पहुँचना चाहिए था, वहाँ नहीं है, ज़िम्मेदार वहीं हैं जिन्होंने उसे प्रायवेट लिमिटेड बना रखा है।

उनका लिखा शादी कार्ड आज भी है।



हारून शैख़ बताते हैं- राहत साहब ने जब हमें इस्लामिया करीमिया कॉलेज में पढ़ाया, वो वक़्त सबसे बेहतरीन था। वैसे वहाँ कई उस्ताद थे, पर राहत साहब इसलिए याद हैं क्योंकि जुदा थे। कभी उस्ताद बने नहीं, हमें शागिर्द माना नहीं। उनकी क्लास में दोस्ताना माहौल होता था। हम उनका इंतज़ार करते थे, जबकि वो सियासी दौर था... मतलब कॉलेज में चुनाव होते थे, तरह-तरह के हंगामे थे, बावजूद इसके राहत साहब के लिए हर स्टूडेंट के पास सम्मान था। क्लास से जब बाहर होते तो दोस्ताना गहरा हो जाता था। लड़कों के कंधे पर हाथ रखना, उनके हाथ पर हाथ मारना, कभी-कभी उनकी सिगरेट से कुछ कश चुरा लेना, यही

उनका अंदाज़ था, जो हमारी बिरादरी में मक़बूल था। पढ़ाई को लेकर संजीदा थे, कभी टालमटोल नहीं की। लाजवाब पढ़ाते थे और जिस तरह से समझाते थे, आज भी दिमाग़ में बसा है। सर ने हमेशा काम ईमानदारी से किया। जैसे ही उनका पीरियड खत्म होता, बस शायरी शुरू हो जाती। सामने जो लड़के-लड़कियाँ बैठे होते, उनसे सुनते, ख़ुद सुनाते। जब हमारा पढ़ने का मूड नहीं होता, बाहर ले आते थे। चाय पिलाते, बातें करते और दोस्त के दोस्त हो जाते थे। दिलचस्प क़िस्से भी उनके पास हुआ करते थे। हाज़िर जवाब थे और मजाल है कोई लड़का उनसे बहस कर ले, क्योंकि उनका जो डायलॉग होता था, ज़्यादा बोलने देता नहीं था। लड़के उनके दीवाने थे। आज भी जब सर मिल जाते हैं, अक़ीदत से दिल झुक जाता है। उनके लिए प्यार है, फ़ख्र होता है कि जिन्होंने हमें पढ़ाया, दुनिया भर में मशहूर हैं। हालाँकि इस्लामिया करीमिया में पढ़ाते वक़्त ही ख़ूब मुशायरे पढ़ने लगे थे और हमें पता था, जो हमें पढ़ा रहे हैं, हिंदुस्तान में सुने जाते हैं। मेरी शादी का कार्ड उन्होने ही बनाया था। मैंने सर से कहा, अगर आप लिख देंगे, काम हो जाएगा। बोले-आ जाओ शाम को रानीपुरा वाले अड्डे पर। मैं पहुँच गया। मुझे देखते ही सर ने काग़ज़-क़लम उठायी और लिख दिया... बस कमाल ही था। जहाँ वो कार्ड गया, ज़रूर पूछा गया, किसने लिखा है। कई शादियों में उसकी नक़ल हुई। कुछ दिन बाद जग्गू भाई ज्वेलर्स के यहाँ शादी थी, वही कार्ड दोहराया गया। काँग्रेस नेता मरहूम बशीर मंसूरी के बेटे की शादी में भी यही कार्ड था। सर ने जो किया सब हिट था और ऐसा सबके साथ कहाँ होता है।

दोस्तों के दोस्त

पेंटिंग से साथ आये दोस्त रंग की तरह लग गये,
कोई डिटर्जेंट उन्हें अलग नहीं कर पाया



अपने 'अ़ज़ीज' के साथ 'राहत'

ज़रूर वो मेरे बारे में राय दे लेकिन
ये पूछ लेना कभी मुझसे वो मिला भी है

राहत इन्दौरी को जिन्होंने दूर से देखा है, उनकी राय जो भी हो, पर जो उनके क़रीब रहे हैं, साथ वक़्त गुज़ारा है, धूप-छाँव देखी है। कहने से चूकते नहीं कि राहत इन्दौरी यारों का यार है, दोस्तों का दोस्त है और वफ़ादारी साथ लिये घूमता है। कहा जाता है अच्छे आदमी का पता करना है तो तलाशिए कि किसके पास कितने पुराने दोस्त हैं। इस मामले में राहत इन्दौरी मालामाल हैं। जो कशमकश वाले दौर के दोस्त हैं, आज भी हैं। ज़्यादा बचे नहीं हैं, पर जो हैं, वो वही हैं जब राहत इन्दौरी सड़क पर हुआ करते थे। जो पेंटिंग से साथ आये, रंग की तरह लग गये और कोई डिटर्जेंट उन्हें अलग नहीं कर पाया। शायरी के साथ जो दोस्ती हुई, वो ग़ज़ल की तरह जारी है। कहते हैं जिसे दोस्ती निभाना आती है, वही दुश्मनी निभा सकता है। हालाँकि राहत इन्दौरी के दुश्मन नहीं हैं, पर जिससे उन्होंने नज़र फेरी, कभी मिलायी नहीं-

ये और बात कि दुश्मन हुआ है आज मगर
वो मेरा दोस्त था कल तक, उसे बुरा न कहो

दोस्तों से मुलाक़ात के नाम पर
नीम की पत्तियों को चबाया करो



इंदौर के कुछ शायर दोस्तों के साथ 'राहत'

राहत इन्दौरी कहते हैं- "मेरे पास ऐसे दोस्तों की लम्बी फ़ेहरिस्त है, जिनके एहसान मुझ पर आज भी हैं। आदमी चला जाता है, दोस्ती बिखर जाती है, एहसान रहता है, ऐसे एहसान जिन्हें शायद में कभी अदा नहीं कर पाऊँगा, पर कोशिश रहती है याद रहें। ऐसे दोस्त मुझे मिले हैं जिन्होंने मुझ पर अपना सब कुछ ख़र्च किया है, उनके लिए मैं कुछ भी कर सकता हूँ।"

पन्ने पलटते हुए राहत इन्दौरी सबसे पहले परदेशीपुरा के रमेश वँâवल को याद करते हैं और कई क़िस्से सुना देते हैं। फिर पन्ना पलटता है और रानीपुरा के अनवर खान सामने आते हैं। इस तरह पन्ने पलटते जाते हैं, दोस्त निकलते जाते हैं। फिर 'मोहन' निकलता है... दोस्त नहीं है, शार्गिद है और इन्दौरी ज़बान में कहा जाए तो पट्ठा है, जिसने पट्ठे होने के सारे हक़ अदा किये और राहत इन्दौरी से ख़ूब उस्तादी वसूली। पेंटिंग का काम सीखने आया था... उस्ताद से ऐसे चिपका कि दुनिया से जाने के बाद ही विदा हुआ। राहत इन्दौरी कहते भी हैं- "मेरे बच्चों की तरह था... मेरी औलाद से बढ़कर, मेरे लिए कुछ भी करने को तैयार रहता था। जब वो नाती-पोते वाला हो गया तब भी तय था उस्ताद ही दीवाली के कपड़े बनवाएँगे, फिर चाहे उस्ताद कहीं भी मुशायरा पढ़ रहे हों, किसी भी शहर में हों, ज़िम्मेदारी उनकी थी, मोहन को पकड़े बनवाकर देना है। मैं दर्ज़ी को फोन लगाता, वो कपड़े ख़रीदते, सी कर देते। अब मोहन नहीं है, उसके बच्चों के साथ वही रिश्ते हैं, जो रिश्ते अपनों के साथ निभाये जाते हैं। इनके अलावा दोस्तों की लम्बी फ़ेहरिस्त है और अभी भी दोस्तों के बिना ज़िन्दगी मुश्किल है... फिर जिसके पास दोस्त न हो उससे बड़ा कंगाल कौन हो सकता है।

मुशायरे के डायस पर राहत इंदौरी ने कई दोस्त कमाये। उससे नीचे उतरने के बाद भी दोस्त उनके इंतज़ार में खड़े रहते थे। इस फ़ेहरिस्त में कई नाम हैं, लेकिन अभी अज़ीज़ इरफ़ान क़रीब हैं, उन्हें अदबी दोस्त कह सकते हैं, ाfजनके बारे में राहत इंदौरी कहते रहे हैं- "जब भी मैं

कोई शेर कहता हूँ, अज़ीज़ भाई को ज़रूर सुनाने का मन होता है। नाम तारिक़ शाहीन का भी है, सरवर खान भी हैं। इंदौर में जो राहत इंदौरी को जानते हैं, वो 'राहत-साक़ी' की जोड़ी से वाक़िफ हैं। इस जोड़ी की मिसाल दी जाती रही है, पर बद-नज़र से बच नहीं पायी जो गले में हाथ डालकर घूमा करते थे, एक-दूसरे के सामने खड़े हो गये।

अब फिरतें हैं हम रिश्तों के रंग-बिरंगे जख़्म लिए
सबसे हंस कर मिलना-जुलना बहुत बड़ी बीमारी है



दौर-ए-जवानी में अपने दोस्त के साथ

इसमें कुछ ऐसे लोगों की ख़ुराफ़ात रही जो राहत इंदौरी के क़रीब आना चाहते थे। उन्हें पता था, जब तक साक़ी हैं, उनकी जगह नहीं बन पायेगी, इसलिए निफ़ाक़ के बीज बोये और उस पर फ़सल भी आयी। हालाँकि इंतशार दो ऐसे लोगों के बीच था जो रिश्तों की क़द्र करना जानते थे, इसलिए दूर रहे... एक-दूसरे से बोले नहीं, पर ऐसा भी कुछ नहीं कहा जिससे बातों का बतंगड़ बनता, दोस्ती सड़क तक पहुँचती। राहत इंदौरी को साक़ी इंदौरी से कोई शिकायत नहीं है, वो अभी भी उन्हें अपना दोस्त कहते हैं। साक़ी अब दुनिया में नहीं हैं। कभी राहत इंदौरी ने शेर कहा था-

सबके दुख-सुख उसके चेहरे पे लिखे पाये गये
आदमी क्या था हमारे शहर का अख़बार था

दोनों के दोस्त रहे तारीक शाहीन कहते हैं- "पता नहीं इस दोस्ती पर किसकी नज़र लग गयी थी, लेकिन कुछ लोग थे जो देख नहीं पा रहे थे। अब उन्हें छोड़िए, क्योंकि जोड़ी टूट चुकी है। याक़ूब साक़ी जा चुके हैं, जिन्हें आ़िखर तक रिश्ते ख़राब होने का मलाल रहा। मैं इस दोस्ती का

गवाह रहा हूँ। बहुत वक़्त हम तीनों ने साथ गुज़ारा है। दोनों एक-दूसरे पर जान छिड़कते थे। मैंने देखा है, पूरे दम से इन्होंने साथ निभाया है। रह नहीं पाते थे। सिर्फ़ दो लोगों की दोस्ती नहीं थी, परिवारों का साथ था। राहत इंदौरी का पूरा ख़ानदान साक़ी को जानता था, उनके घर के मेम्बर थे। राहत जब इंदौर में नहीं होते, उनके सारे काम साक़ी ही करते थे, यहाँ तक कि क़ुर्बानी का बकरा ख़रीदने की जिम्मेदारी भी उन्हीं के पास थी। राहत जब इंदौर आते, सबसे पहले उनके मुँह से साक़ी का नाम निकलता था। उन्हें देख नहीं लेते चैन नहीं मिलता। लेकिन कहते हैं दोस्ती जहाँ होती है वहाँ अदावत भी बहती है, पर दिखती नहीं है, लेकिन जिनकी नीयत खराब होती है उन्हें दिख जाती है। इन लोगों ने ऐसा निफ़ाक़ डाला, जो साक़ी की मौत पर ही ख़त्म हुआ। हालाँकि दोनों में बड़प्पन था, कभी लड़ाई को सड़कछाप नहीं बनाया, एक-दूसरे के बारे में कुछ नहीं कहा। राहत से जब भी बात हुई ख़ामोश रहे। साक़ी जरूर इस बात के लिए तड़पते रहे कि उनसे उनका दोस्त छीन लिया गया। दोनों ने जितना वक़्त साथ गुजारा, शानदार था और जो अच्छा वक़्त था उसे ही याद किया जाना चाहिए।''

इंदौर के सरवर खान भी राहत इंदौरी के क़रीब रहे हैं, लेकिन गाँधी हॉल के मुशायरे ने दूर कर दिया, जिसके कन्वीनर सरवर ख़ान के भाई अनवर ख़ान थे। राहत इंदौरी ने सरवर खान को मुख़ातिब कर जो शेर सुनाया, सीधा चिपक गया और दरार की वजह बना। बात सिर्फ़ इंदौर तक नहीं है, कई शायर भी उनके दोस्त रहे हैं, अज़ीज़ रहे हैं और अभी भी हैं। काशिफ़ इंदौरी से बात शुरू की जा सकती है, जो नूर इंदौरी तक पहुँचती है... मुनव्वर राना का इसमें ज़िक्र किया जा सकता है। कैफ़ भोपाली और वाली आसी के बिना बात पूरी हो नहीं सकती है। तशना आलमी, मंज़र भोपाली, ताहिर फ़राज़, अनवर जलालपुरी भी राहत इंदौरी के क़रीब रहे हैं और याराना अभी भी मौजूद है। हालाँकि अनवर जलालपुरी अब नहीं रहे।

सलीक़ा हो तो हर बात सुनी जाती है

बशीर बद्र बोले- जगजीवनराम ख़ुश हुए, उनकी बिरादरी में भी शायर हैं



एक नशिस्त के दौरान

राहत इन्दौरी के पास सिर्फ़ शायरी ही नहीं है... मौक़े पर बोलना, मुख़्तसर बोलना और क्या बोलना, अच्छे से जानते हैं, इसलिए जिन्हें उनके शेर याद हैं, उन्हें वो डायलॉग भी याद हैं, जो हर उस जगह सुने और सुनाये गये, जहाँ शायरी सुनी और सुनायी जाती है। राहत इन्दौरी ने जितना भी सफ़र किया, उसमें बोलने से कभी परहेज़ नहीं रखा। सच बोला, ग़लत सुना नहीं और कभी किसी की बात को घर लेकर गये भी नहीं। जिसने जो कहा, फ़ौरन लौटा दिया और लौटाते वक़्त जिन जुमलों का इस्तेमाल किया, मशहूर अशआर की तरह लोगों की ज़बान पर हैं। उनके इस अंदाज़ ने मुशायरे के डायस पर उन्हें बादशाहत दिलायी है। जब-जब भी राहत इन्दौरी माइक पर रहे हैं, शायरों के लिए ज़रूरी रहा है कि वो सिर्फ उन पर ही तवज्जो दें, क्योंकि उन्हें पता है, नज़र हटते ही हादसा हो सकता है। हमेशा सलीक़े से अपनी बात कही और वसीम बरेलवी के शेर को ज़िन्दा रखा-

कौन-सी बात कहाँ कैसे कही जाती है
ये सलीक़ा हो तो हर बात सुनी जाती है

राहत इन्दौरी कहते हैं- "अगर आप सिर्फ़ सुनते हैं तो अच्छा बोल नहीं सकते इसलिए वही सुनिए जो सुनने लायक़ है, वही सुनाइए जो सुनाने लायक़ है। ग़लत सुनना गुनाह है, उतना ही बड़ा गुनाह, जितना ग़लत बोलना। मैं गुनहगार नहीं हूँ इसलिए झगड़े हो जाते हैं। जब शायर नहीं था, तब भी लड़ लेता था, शायर बना, तो भी लड़ाकू हूँ। हाँ, मेरी लड़ाई सड़क छाप नहीं है... उसूल है, बात है, अपनी राय है, जिसमें बदतमीज़ी नहीं है, पर समझौता भी नहीं है और बहस उसे ही करना चाहिए जो ग़लती मानने की जुर्रत रखता हो। ये जुर्रत ख़ुदा ने मुझे दी है।

मैं तो ख़ुमार साहब से भी भिड़ लिया था। मुझे ख़ुमार बाराबंकवी ने समझाया कि सब्र किया करो, जो तुम करते हो, उसे हमारे उत्तर प्रदेश में 'कुटनी' कहते हैं। यहाँ राहत इन्दौरी को सादिक़ इन्दौरी याद आ जाते हैं। कहते हैं- "इन्दौर में जब पढ़े-लिखों की टक्कर होती थी, तो शादा साहब के साथ सादिक़ इन्दौरी का नाम लिया जाता था। अलिगेरियन थे, रखरखाव वाले थे। हमेशा शेरवानी में होते, करार्ेफर था। लोग उनकी इज़्ज़त करते... जूते हमेशा चमकते थे, समझ उनमें थी ही।



फ़ुर्सत के रात-दिन

बात उन दिनों की है जब रानीपुरा के नेता मुन्ना अंसारी की शादी थी। उनकी शादी का कार्ड मैंने ही लिखा था। वलीमा चल रहा था। मेरे साथ मुन्ना अंसारी खड़े थे, कुछ दोस्त और थे। उसी वक़्त हाथ में सिगरेट लिए सादिक़ इन्दौरी पहुँचे। मुन्ना अंसारी से बोले- किसने लिखा तुम्हारा शादी कार्ड? अंसारी ने बिना वक़्त गँवाये कहा- राहत भाई ने। सादिक़ इन्दौरी ने मेरी तरफ़ देखा, बोले 'मुतमन्नी' का मतलब इन्तज़ार करने वाला नहीं होता है। असल में मैंने तहरीर के आख़िर में लिख दिया था, आपकी आमद के 'मुतमन्नी'। सादिक़ इन्दौरी मुझे भीड़ में ज़लील कर चुके थे। बात मेरे दिल में रह गयी। मैं घर आया, लुगत खँगाली... पता चला मैं सही हूँ। मैंने उसे साथ लिया और रानीपुरा के पटिये पर आकर बैठ गया। मेरे साथ अहमद निसार भी थे। उन दिनों उन्होंने शेर कहना शुरू कर दिया था। मैंने 'मुतमन्नी' वाला सफ़हा मोड़कर निसार के हाथ में लुग़त दे दी और कहा- जैसे ही सादिक़ इन्दौरी आयें मुझे दे देना। थोड़े इन्तज़ार के बाद अदबी अखाड़े पर सादिक़ इन्दौरी हाज़िर थे। पान की दुकान पर पहुँचे। सिगरेट जलायी, कश लिया (ये उनका उर्दू अदब पर एहसान था)। हम तक पहुँचे तो मैंने उनसे कहा, कल आपने कहा था 'मुतमन्नी' के मानी इन्तज़ार करने वाला नहीं होता। उन्होंने कश चढ़ाते हुए जवाब दिया- जी। मैंने फ़ौरन निसार से बोला, लुग़त सामने रखो।

(रखने के बाद) बोले- अच्छा, ये भी होता होगा। मैंने कहा- होता नहीं होगा, आपने मुझे ज़लील किया है। अब सादिक़ इन्दौरी के पास जवाब नहीं था, वो जाने के रास्ते तलाशने लगे। मैं कैसे छोड़ सकता था। मैंने कहा, क्या आप मुझे गवय्या समझते हैं, आपको किसी ने देवास-महू भी मुशायरे में नहीं बुलाया होगा, मैं पूरे मुल्क में इन्दौर की नुमाइन्दगी कर रहा हूँ।

बनारस का वो मुशायरा भी बड़ा मशहूर है, जिसमें जगजीवनराम मेहमाने ख़ुसूसी थे। जैसे ही उस मुशायरे की याद राहत इन्दौरी को दिलायी गयी, उनके चेहरे पर मुस्कान आ गयी और मुस्कराते हुए बताने लगे, बनारस का मुशायरा अक्सर मेरे सामने खड़ा कर दिया जाता है, मेहमाने ख़ुसूसी जगजीवनराम थे। वो शायरी में ख़ासी दिलचस्पी ले रहे थे। मैंने पढ़ना शुरू किया, दो-चार शेर उनको नज़्का किये। मैं शायरी के बीच में बात भी करने लगता हूँ। अचानक मेरी नज़र जगजीवनराम के चेहरे पर पड़ी और मेरे मुँह से निकला- चलिए, मुझे आज एहसास हो गया, मैं किसी न किसी से तो ख़ूबसूरत हूँ। आमतौर पर क़िस्सा यहीं तक का सुनाया जाता है, पर इसके आगे भी है और वहीं पूरा होता है। बशीर बद्र निज़ामत कर रहे थे, फ़ौरन बोले- जगजीवनराम साहब भी बहुत ख़ुश हुए कि उनकी बिरादरी में शायर भी हैं।

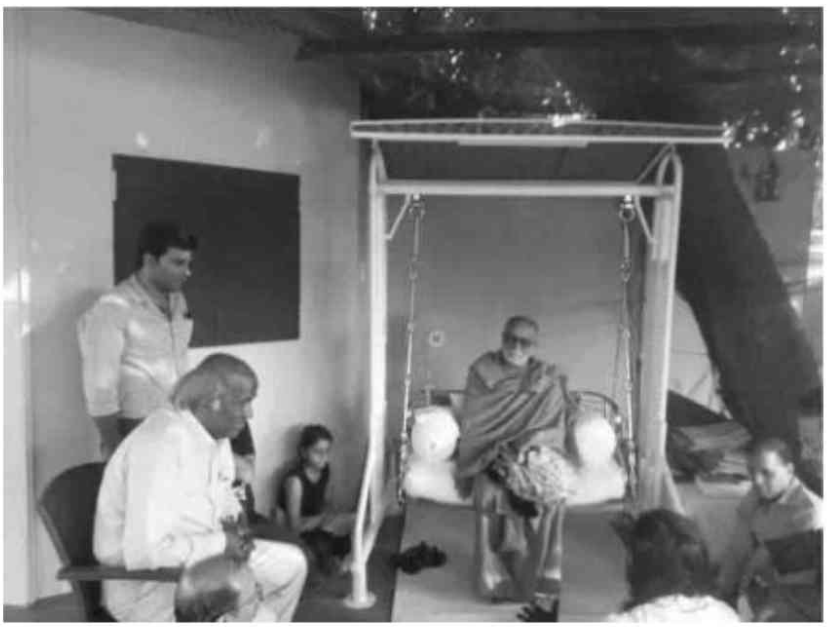
बरसों बाद फिर राहत इंदौरी की बाबू जगजीवनराम से मुलाक़ात हो गयी, लेकिन सब कुछ बदल गया था। जो बनारस में मुशायरे की सदारत कर रहे थे, अब उनकी याद में कवि-सम्मेलन हो रहा था। अप्रैल 2018 को मनमोहन सिंह और बाबूजी की लड़की मीरा कुमार की मौजूदगी में राहत इंदौरी ने शमअ रौशन की और बनारस फिर दिखने लगा था।



दीप प्रज्वलित करते हुए राहत साहब

सीन और शीन में उलझी उर्दू

मुशायरा कारोबार बन गया है
बाज़ारी बुराइयाँ इसमें शामिल हो गयी हैं।



मुरारी बापू के हुजरे में 'क़लंदर'

राहत इन्दौरी ने मुशायरों का वो दौर देखा है, जब अदब ज़िन्दा था, उस्ताद की इ़ज्ज़त बरक़रार थी, मुशायरों का वक़ार था, उर्दू आबाद थी। शेर कहने का लहजा था, तरीक़ा था, अदब था। दाद के पास सलीक़ा था। सुनने वाले मुशायरे को इबादत समझते थे। राहत इन्दौरी की जिन आँखों ने सुनहरे मुशायरे देखे हैं, वही आँखें बंजर मुशायरे भी देख रही हैं... जिन कानों ने मीठी उर्दू सुनी है, अब शोर सुन रहे हैं। न मुशायरों के पास वक़ार है, न ही उर्दू आबरू बचाते दिखायी दे रही है। जब भी मुशायरे और उर्दू की बात होती है, बदहाली सामने आ जाती है, ज़िम्मेदार तलाश किये जाते हैं और जो तलाशते हैं, क्या वो कम ज़िम्मेदार हैं। जो ख़ुद को उर्दू का आलिम समझते हैं, उन्होंने ही इसकी राह तंग की है, इसको आबाद रखने के बजाए इमले की ग़लतियाँ निकालकर ख़ुद को फ़ाज़िल बताते रहे हैं। जिसके पास उर्दू थी, उसने ग़ैर-उर्दू वाले से दूरी नहीं रखी, नफ़रत की, उसे हिक़ारत से देखा। उसे उर्दू नहीं दी बल्कि उसकी इस कमज़ोरी को अपनी ताक़त बनाया और जिसने थोड़ी उर्दू पढ़ ली, उसे ज़ेर-ज़बर, क़ाफ़-काफ़, सीन और शीन में उलझा दिया। ऐसा उलझाया कि ख़ूबसूरत ज़बान ही उलझकर रह गयी। कभी उर्दू के लिए दाग़ ने कहा था-

उर्दू है जिसका नाम हमीं जानते हैं 'दाग़'
हिन्दोस्ताँ में धूम हमारी ज़बाँ की है

मीर ने कहा –

ग़ुफ्तग़ू रेख़्ते में हमसे न कर
ये हमारी ज़बान है प्यारे
रविश सिद्दीक़ी का शेर है –

उर्दू जिसे कहते हैं तहज़ीब का चश्मा है
वो शख़्स मुहज्ज़ब है जिसको ये ज़बाँ आयी

हालात बदले और बशीर बद्र ने कहा-

वो इत्रदान सा लहजा मेरे बुज़ुर्गों का
रची बसी हुई उर्दू ज़बान की ख़ुशबू

और अब मनीष शुक्ला कहते हैं-

बात करने का हसीं तौर-तरीक़ा सीखा
हमने उर्दू के बहाने से सलीक़ा सीखा

उर्दू बिखरी तो मुशायरे बिखर गये उनका क़ब्ज़ा होने लगा जो उर्दू लिखना तक नहीं जानते हैं और नुक्तों की अहम्मीयत से ना-वाक़िफ़ हैं। जब शायर अपना कलाम हिन्दी में लिखेंगे और उर्दू को समझ नहीं पायेंगे तो मुशायरों का क्या होगा समझा जा सकता है। अगर मुशायरे पीछे आ रहे हैं तो वो लोग भी ज़िम्मेदार हैं, जो उर्दू के डायस पर शेरवानी पहनकर अदबी ख़ादिम दिखायी देते हैं, पर उन्हें नहीं रोक पाते हैं जो उर्दू के बग़ैर ही उसके स्टेज से दाद वसूल रहे हैं। इस सबने मुशायरों का वक़ार छीन लिया और इस बैचेनी को हर उस शायर, अदीब में ढूँढ़ा जा सकता है जो मुशायरों के साथ अदब के लिए भी फ़िक्रमंद रहते हैं और अपनी बात को उसी तरह कहते हैं, जैसे मुनव्वर राना कहते रहे हैं-

सुनो हंसी के लिये गुदगुदाना पड़ता है
चराग़ जलता नहीं है जलाना पड़ता है

मुशायरा भी तमाशा मदार, शाह का है
यहाँ हर एक को करतब दिखाना पड़ता है

उर्दू बचाओ मोर्चा, कुछ तब्सिरा करे
रद्दी-फ़रोश ख़ुश हैं कि अख़बार खुल गया

राहत इन्दौरी भी बदलते माहौल से बेचैन हैं, पर उम्मीद की रस्सी को छोड़ना नहीं चाहते। कहते हैं- "इस बदहाली में सबकी हिस्सेदारी है, जिसको जब मौक़ा मिला, उसने काम किया है। जब से मुशायरे में

तिजारत आयी है, इसने फिसलना शुरू कर दिया। जिस मुशायरे में कभी पैसे का तसव्वुर नहीं था, आज बिना पैसे के कुछ भी नहीं है। बोली लग रही है, फ़न और फ़नकार बेचे जा रहे हैं। जो ऊँची बोली बोलता है, शायर उनको सलाम करते हैं। मुझे याद है पहले पैसे की बात बेशर्मी समझी जाती थी और जबसे शर्म की चादर हटी है, सिर्फ़ पैसा रह गया है। वरना कितने ही बड़े शायर को आप बुला लीजिए, मजाल



अमेरिका में अहमद फ़राज़ के साथ

नहीं थी, वो पैसे का ज़िक्र कर ले। इसे तौहीन समझा जाता था और मुशायरा कराने वाला डरता था, कहीं पैसे की बात की तो शायर मोहतरम नाराज़ न हो जाएँ। मिसाल के लिए मैं कैफ़ भोपाली को आगे कर सकता हूँ। उन्होंने पूरी ज़िन्दगी कभी पैसा नहीं माँगा। उनसे कोई पैसे की बात करता तो हँसकर कहते एक रुपया दे देना। अब पैसे पहले तय होते हैं, उस पर हुज्जत होती है, मोल-भाव होता है और खरी-पक्की होने के बाद ही शायर जगह छोड़ता है।

मुझे कहने दीजिए... मुशायरा अब कारोबार बन गया है और सारी बाज़ारू बुराइयाँ इसमें शामिल हो गयी हैं। इसके लिए सिर्फ बाज़ार को ही ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता, शायर भी ज़िम्मेदार हैं और वो शायर ज़िम्मेदार हैं, जो बाज़ार से तआल्लुक़ रखते हैं... बाज़ारू हो गये हैं और इन्होंने ही मुशायरे को नुक़्सान पहुँचाया है। असल में मुशायरे का जो तसव्वुर था, बचा नहीं है। न अदब है, न शऊर है, न रिवायत बची है। सीटियाँ बज रही हैं, बदतमीज़ी हो रही है, तालियाँ पीटी जा रही हैं और ताली पीटने की गुज़ारिश ख़ुद शायर कर रहे हैं। जिस मुशायरे के इर्द-गिर्द गंदगी का ढेर लग गया है, कभी वो मुशायरे अदब का स्कूल हुआ करते थे, वहाँ से बहुत कुछ सीखा जाता था, तभी तो इन्हें बिना किताब का मरकज़ कहा जाता था। जब उस्ताद-शायर शायरी करते तो शागिर्दों को दाद देने की इजाज़त नहीं थी, बड़ा एहतराम हुआ करता था। उस्ताद की जूतियाँ उठाना फ़ख्र था... अब उस्ताद की जूतियाँ सिर्फ शायरी में बची हैं, असल में सिर पर मारी जा रही हैं। कोई चार मुशायरे और चौदह

ग़ज़लें कह देता है तो ख़ुद को सिर्फ़ शायर नहीं समझता, उस्ताद कहलाना शुरू कर देता है-

सुख़नवरों ने ख़ुद बना दिया सुख़न को इक मज़ाक़
ज़रा-सी दाद क्या मिली ख़िताब माँगने लगे

उस्ताद तो अदब का नाम हुआ करता था, जिसको ख़ास इ़ज्ज़त हासिल थी, वो एहतराम था कि उनके सामने शागिर्द तरन्नुम छेड़ने से डरते थे। असग़र गोण्डवी को ही ले लीजिए, जिगर के उस्ताद थे। ग़ज़ल सुना रहे थे, तभी जिगर की शेरवानी में ज़हरीला कीड़ा घुस गया और काटना शुरू कर दिया। पर जिगर हिले भी नहीं, दर्द सहते रहे। जब असग़र गोंडवी की ग़ज़ल मुकम्मल हुई तो उठकर गये, शेरवानी हटायी, पता चला कीड़ा बड़ा ज़ख़्म बना चुका है। अब शायर मुशायरे के डायस पर पेशाब कर रहे हैं। फिर क्यों नहीं करेंगे, शायरी के नाम पर माल बेचना है। करना क्या है, न तो पढ़ने की ज़रूरत है, न कोई शऊर पैदा करना है। सोच-समझ भी किराये की चल जाती है। इधर-उधर से शेर लेना है, एक-दो जोड़े कपड़े सिलवाना है,



एम.एफ.हुसैन अपने गहरे दोस्त राहत इंदौरी के साथ

अच्छी अटैची ख़रीदना है और निकल पड़ना है। एक तख़ल्लुस की ज़रूरत पड़ती है, या तो ख़ुद रख लीजिए या फिर कहीं से उधार ले लीजिए और अगर ये भी नहीं कर पाये तो कोई न कोई तख़ल्लुस लगा ही देता है। बस फिर क्या है, बन गये शायर-

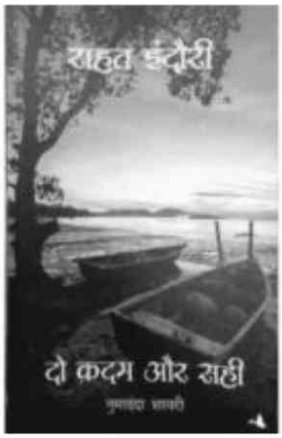
मेरे कारोबार में सबने बड़ी इमदाद की
दाद लोगों की, गला अपना, ग़ज़ल उस्ताद की

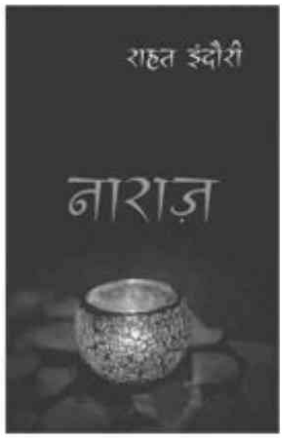
इस बिगाड़ के लिए वो शायर ज़िम्मेदार हैं, जिन्होंने अपने कलाम दूसरों को लिखकर दिये और शायर पैदा किये है। सब दो सौ बरस से होता आ रहा है, जब आप तरीख़-ए-उर्दू पढ़ेंगे तो पता चलेगा कि जो अदब के मरकज़ रहे हैं, वहाँ भी होता था। इमानउल्लाह खाँ यक़ीन अपने अहद के बड़े शायर थे, पर मीर तक़ी मीर उनके बारे में कहते थे, वो शायर नहीं हैं, किसी दूसरे से लिखवाते हैं। मैं नहीं कह रहा, किताबों में लिखा है। ग़ालिब ने भी यही किया। बहादुर शाह ज़फ़र के दरबार में जितने शायर थे, सबको ग़ालिब लिखकर देते थे। अखाड़ेबाजी चलती थी, लड़के तैयार किये जाते थे। हाली ने 'यादगार-ए-ग़ालिब' में लिखा है- एक बार ग़ालिब अपनी गद्दी पर बैठे थे, मैं भी उनके साथ था। तभी दरबार से कुछ लोग आये और ग़ालिब ने गादी के नीचे से कुछ कागज़ निकालकर दे दिये, जिसमें ग़ज़लें थीं और फिर हाली से कहा पेट के लिए दरबार की ख़िदमत करना पड़ती है, कभी एक मिसरा लिखकर आ जाता है, कभी दोनों मिसरे मिल जाते हैं और मुझे ग़ज़ल पूरी करके देना होती है। अगर इसके बाद मैं कहता हूँ, तो क्या ग़लत है-

ये क्या ज़रूरी है ग़ज़लें भी ख़ुद लिखी जाएँ
ख़रीद लायेंगे कपड़े सिले-सिलाये हुए

जिस अन्दाज़ में राहत इन्दौरी बात कर रहे थे, उससे लगा उम्मीद छोड़ चुके हैं और मुशायरों से मायूस हैं। हालाँकि उनके हिस्से जो भी कामयाबी आयी है, उसमें मुशायरों की सबसे बड़ी हिस्सेदारी है, इसे वो क़ुबूल भी करते हैं। कहते हैं- "मैं चाहता हूँ मुशायरों की हालात सुधरे, अल्लाह से दुआ भी करता हूँ, पर मुझे लगता है रिवायती मुशायरे धीरे-धीरे ख़त्म हो जायेंगे। शायर मुशायरे में कैसे बैठा है, कैसा पढ़ रहा है, नाज़िम उसे कैसे बुला रहा है, कैसे दाद दी जा रही है और कैसे छोटे-बड़े का अदब हो रहा है, सब ख़त्म हो गया है। अब नया मुशायरा है, नया तरीक़ा है और हर दिन इसमें बदलाव होता रहेगा, इस सबके बावजूद मुझे यक़ीन है, मुशायरा ज़िन्दा रहेगा। ठीक है, तब्दीलियाँ सिलसिला हैं। अब कवि सम्मेलन-मुशायरा साथ

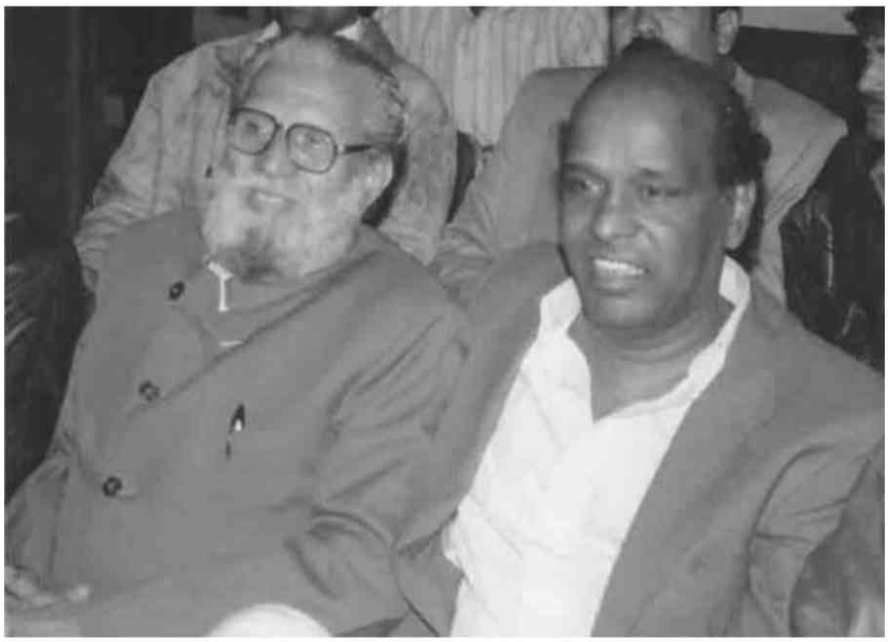






हिन्दी (देवनागरी) में शाया (प्रकाशित) हो चुकी कुछ किताबें

हो रहा है। तालियाँ बज रही हैं, बजवायी जा रही हैं और सीटियों की आवाज़ के बीच भी शायर पढ़ने से रुक नहीं रहे हैं। समाज में जितनी बुराइयाँ हैं, सब मुशायरे में आ गयी हैं। मैंने शराब पी है, कभी छुपाया नहीं, लेकिन अदब की चादर कभी फेंकी नहीं। जब भी हम देखते वसीम बरेलवी आ रहे हैं, फ़ौरन गिलास छुपा दिया करते थे। ज़िम्मेदारी से कहता हूँ मुशायरे में बड़ा बिगाड़ शायरात की वजह से हुआ है। कोई शायरी तो होती नहीं हैं और इन्होंने ही मुशायरों को कारोबार बनाया है, दुकानें खोल ली हैं। मैं किसी का नाम लेना नहीं चाहता, पर किसी को छोड़ भी नहीं सकता। मुशायरे की बरबादी से कनविनर को भी आज़ाद नहीं किया जा सकता। हाँ, लेकिन शायरों में कोई गैंगवार है, इससे इंकार करता हूँ; पता नहीं सवाल बार-बार क्यों सामने आता है। मैंने सैकड़ों मुशायरों की टीम बनायी है, लेकिन कभी अपनी पसंद नहीं थोपी और न ही कोई गैंग बनायी। हमेशा शायरों का इन्तेख़ाब किया और जो शायर नहीं है, उसका नाम कभी आगे नहीं बढ़ाया।



रशीद इंदौरी और राहत इंदौरी

उर्दू ख़त्म हुई, तभी मुशायरे कमज़ोर हुए हैं और इसमें सरकार भी ज़िम्मेदार है। जहाँ से उर्दू सीखी जाती थी, उन मक़तबों में तो अब जानवर पाले जा रहे हैं। मेरे शहर में कोई ऐसा उर्दू स्कूल दिखायी नहीं देता, जहाँ उम्मीद का दीया टिमटिमा रहा हा, इसकी ज़िम्मेदारी से सियासत को कैसे छोड़ा जा सकता है, जिसने साज़िश के तहत उर्दू को मज़हबी बना दिया। किसी का शेर है-

अपनी उर्दू तो मुहब्बत की ज़बाँ थी प्यारे
अब सियासत ने इसे जोड़ दिया मज़हब से

समझ नहीं आता, हिन्दुस्तानी ज़बान को मुसलमानों की ज़बान क्यों बना दिया। उर्दू सबकी ज़बान थी, लेकिन बड़ी तरकीब के साथ उसे इस्लाम से जोड़ दिया गया, उस पर मज़हबी परदा डाल दिया गया। यानी जितनी आबरू उसकी उर्दू वालों ने नोची है, उतना ही ज़ुल्म सरकारों ने भी किया है, फिर चाहे वो किसी की भी रही हो, पर सबका सलूक एक-सा रहा है। अब हिन्दुस्तानी ज़बान मज़लूम खड़ी अपना हक़ माँग रही है। फ़िलहाल तो किसी के पास उसके लिए वक़्त नहीं है। जो भी हो, अता आबिदी का शेर बात को पूरी करता है-

आज भी 'प्रेम' के और 'कृष्ण' के अफ़साने हैं
आज भी वक़्त की जम्हूरी ज़बाँ है उर्दू

इंदौर के राहत साहब

उनके पढ़ने के बाद मुशायरा ख़त्म हो जाता है



शब-ए-सुखन के मुशायरे में

'घर का जोगी जोगड़ा' सुनते, देखते और लिखते आये थे, पर जब-जब राहत इन्दौरी के साथ टाँकने की कोशिश की, नाकामी हाथ लगी, क्योंकि जो दीवानगी उनको लेकर कराची में है, जो दाद उन्हें लंदन में मिलती है, जो तालियाँ उनको दुबई देता है और जिस मोहब्बत से बनारस उनकी झोली भर देता है, वो सब उनके शहर इन्दौर में भी हासिल है। घर में इ़ज्ज़त, शोहरत, दाद के लिए बड़े-बड़े फ़नकार तरसे हैं और इसी तमन्ना में विदा हो गये कि जिस मिट्टी से उठे थे, वहाँ उन्हें नवाज़ा जाए। लेकिन मिट्टी की अपनी तासीर है और इन्दौर की मिट्टी अपनों के लिए उपजाऊ है, उसमें लोच है। राहत इंदौरी ने इस मिट्टी का क़र्ज़ उतारा है और उनके शहर को वहाँ तक पहुँचा दिया, जहाँ उर्दू बोलने-सुनने वाले मौजूद हैं। वो अपने शहर में मुसाफ़िर की तरह रहे हैं और चंद रातें ही उन्हें मयस्सर हुई हैं... लेकिन जब भी अपनों के बीच खड़े हुए हैं, उनके क़द में इज़ाफ़ा ही हुआ है। इसके गवाह इन्दौर के वो मुशायरे हैं, जो राहत इन्दौरी के पढ़ते ही ख़त्म हो जाते हैं, जबकि ज़ाहिरी तौर पर चलते रहते हैं। कई मुशायरे इन आँखों से ग़ुज़रे हैं, जब राहत इन्दौरी का पढ़ना ख़त्म हुआ और उनका शहर घर की तरफ़ रवाना हो गया, फिर चाहे कोई भी शायर क्यों न बाक़ी रह गया हो।

'शब-ए-सुख़न' के उस मुशायरे का ज़िक्र किया जा सकता है, जो तारीख़ बन गया। पुलिस लट्ठ बरसा रही थी और सुनने वाले एक-दूसरे को रौंदकर हॉल में दाख़िल हो रहे थे। वजह डायस पर मुज़फ्फ़र हनफ़ी, वसीम बरेलवी, मुनव्वर राना, मेअराज फ़ैज़ाबादी, अनवर जलालपुरी जैसे शायर थे और मेहमाने ख़ुसूसी राज बब्बर थे। वसीम बरेलवी पढ़ चुके थे, मुनव्वर राना भी पढ़कर जा चुके थे। मुज़फ्फ़र हनफी, मेअराज फ़ैज़ाबादी का कलाम पूरा हो गया था और सबसे आ़ख़िर में राहत

इन्दौरी पढ़ने आये, लेकिन मजाल है, इन्दौर के सबसे बड़े इनडोर स्टेडियम की कोई कुर्सी बरहेना दिख जाए। सब जमा थे। जब अनवर जलालपुरी ने राहत इन्दौरी को माइक दिया तो मुशायरा तारीख़ में दर्ज हो चुका था। कई बार हंगामा हुआ, लोग अंदर आने के लिए बेचैन थे, जो आ गए थे, वो बाहर वालों को लाना चाहते थे। इसके बाद राहत इंदौरी ने माईक पकड़ा और ख़ामोशी की बस गुज़ारिश की थी, सब ख़ामोश थे।



90 के दशक की एक तस्वीर

इन्दौर में पढ़ना अगर आसान है, तो मुश्किल भी है। वजह यहाँ जो दाद देते हैं, रुसवा भी वही करते हैं। पर राहत इन्दौरी के खाते में कभी कोई रुसवाई नहीं आयी, बल्कि उन्होंने कई शायरों को रुसवा होने से बचाया है। संतोष आनन्द पढ़ने आये थे, कोई उन्हें सुनने को तैयार नहीं था और वो ऐसा कुछ सुना भी नहीं रहे थे जिसे सुना जाए, पर राहत इन्दौरी ने अपनी अवाम से कहा... मेहमान हैं, इन्हें सुनना है। तो उसके बाद संतोष की उन कविताओं का भी आनन्द लिया गया जो आनन्द के लायक़ नहीं थीं। ग़ालिबन मरहूम सिराज वारसी का मुशायरा इन्दौर के टैगोर हॉल में हो रहा था, नूर इन्दौरी अपने आख़िरी दौर में थे और वही नूर थे जिन्हें शहर काँधे पर लिये घूमता था। लेकिन उस रात यही शहर नूर से इनकार कर रहा था। तब उनके दोस्त राहत इन्दौरी ने माइक पर आकर नूर इन्दौरी का फिर से तआर्रुफ़ कराया, उसके बाद जब तक नूर पढ़ते रहे, नूर बरसता रहा। इन्दौर की बेतमीज़ ज़बानों ने जैसे सीटियाँ पेट में उतार ली थीं और वो जुमले भी ज़बान में लपेट लिये गये थे जो राहत इन्दौरी के बोलने से पहले नूर इन्दौरी तक पहुँच रहे थे।

राहत इन्दौरी को भी एहसास है कि उनके शहर ने उन्हें जो दिया कम को मयस्सर हुआ है और वो कहते भी हैं- "इन्दौर की मुहब्बतों का क़र्ज़ उतारा नहीं जा सकता। मैंने जब पहली नशिस्त पढ़ी थी, तब मुझे जो दाद मिली, उसका सिलसिला आज तक जारी है और हर बार उसमें इज़ाफ़ा दिखायी देता है। कभी-कभी लगता है, जो मोहब्बत मेरा शहर दे रहा, मैं उसके बदले क्या दे रहा हूँ और जब मैं इसका ज़िक्र अपने दोस्तों

से करता हूँ, वो ये कहकर मुझे हिम्मत देते हैं तुम भी शहर को दुनिया में ले जा रहे हो, तआर्रुफ़ करा रहे हो, उसका मर्तबा बढ़ा रहे हो।

जब राहत इन्दौरी के सामने इन्दौर का अदब, उर्दू और मुशायरे खड़े कर दिये जाते हैं तो बेचैन हो जाते हैं और सवाल रहता है राहत इन्दौरी के सामने ही इन्दौर का अदब कमज़ोर हो गया... शायरी तंग हो गयी... नयी आवाज़ सुनने को नहीं मिल रही। राहत इन्दौरी ने जब आग़ाज़ किया था तब इन्दौर की कई आवाज़ें हिन्दुस्तान में सुनी जाती थीं और आज सिर्फ़ राहत इन्दौरी की ही आवाज़ लालक़िले तक जा रही है। अमेरिका, इंग्लैण्ड के साथ पूरी दुनिया में यही आवाज़ सुनी जा रही है। आख़िर दूसरी आवाज़ें क्यों नहीं आ रही हैं। राहत इन्दौरी रुकते हैं, सँभलते हैं और कहते हैं- "इन्दौर में भी शायरी है, शायर हैं, मेरे बाद भी होंगे और सिलसिला चलता रहेगा।

अगर अभी ताज़ा आवाज़ नहीं है, इंतज़ार लम्बा हो गया है तो समझ लीजिए कि जल्द ही कोई आवाज़ इन्दौर से उठने वाली है।" वो किसकी होगी, क्या किसी की आवाज़ आपके कान तक पहुँची है? राहत इन्दौरी कहते हैं- "कोई न कोई तो आगे आयेगा और मुझे अपने शहर से उम्मीद है। मायूस होना नहीं चाहिए।" इतने अरसे तक ख़ामोशी क्यों रही... क्या इसके लिए वो ज़िम्मेदार हैं, जिन्होंने इन्दौर में उर्दू का झण्डा उठा रखा है? राहत इन्दौरी का जवाब था- "हमारे यहाँ सिखाने वाले बहुत रहे हैं, अच्छे रहे हैं, जो इन्दौर ही नहीं, मुल्क को सिखाने की ताक़त रखते हैं, पर उन्होंने किसी को सिखाया नहीं। जब स्कूल ही पढ़ाने से इनकार कर दे, सिखाने में कोताही करे, तो नस्लें कैसे आगे बढ़ेगी। अगर इन्दौर में कोई दिख नहीं रहा तो वजह यही है। दूसरी परेशानी है सबको शायर बनना है, जबकि अदब को देने के लिए ज़रूरी नहीं है कि शायरी ही की जाए।

अफ़साने लिखे जा सकते हैं, दास्तान बयाँ की जा सकती है, उर्दू सहाफ़त की जा सकती है; दूसरा भी बहुत कुछ किया जा सकता है, लेकिन शायरी आसान है, बस दो मिसरे तो कहना है। इसके बाद शोहरत है, पैसा है, इसलिए सब इस तरफ़ भागते हैं। अदब की तरफ़ कोई नहीं जाता है और जो शायरी में आ भी रहे हैं, कच्चे हैं, इंतज़ार कर नहीं पाते और आते ही मक़ाम चाहिए रहता है, पढ़ने की फ़ुरसत नहीं रहती। जबकि मैंने कहने से पहले उतना पढ़ा है, जितना मैं अभी तक नहीं कह पाया हूँ और जब शेर कह देता तो यक़ीन नहीं होता क्या ये मेरा शेर है। जब मेरी किताब 'धूप-धूप' छपने गयी तो कई ऐसे शेर थे ज्ञिन्हें पढ़कर मैं रुक जाता था और सोचता था क्या मैं इतने अच्छे शेर कह लेता हूँ।

नई नस्ल आराम तलब है, उसे सब कुछ जल्दी चाहिए। वो कहने से ज़्यादा देखने पर यक़ीन रखती है। किसकी अदा कामयाब है, उसे अपना लिया जाए। अगर शराब पीने से शोहरत मिलती है तो गिलास हाथ में होना चाहिए और जब तक ऐसी सोच रहेगी, सिर्फ़ शहर का अदब ही नहीं थमा रहेगा, मुल्क में भी तंगी नज़र आयेगी। मैं कहता रहा हूँ कि मुशायरा और अदब अलग-अलग हैं। इन्दौर मुशायरे में कहाँ है, आप तय

कीजिए, लेकिन अदब में काम हुआ है। मरहूम अज़ीज़ इन्दौरी ने बहुत काम किया है। इन्दौर के लिहाज़ से वो कामयाब रहे हैं। हिन्दुस्तान में उन्हें पहचाना जाता है। इन्दौर में शेर कहे जा रहे हैं, सिलसिला चल रहा है, उम्मीद है कि जल्द ही नयी आवाज़ सामने आयेगी।

मेरे शहर की ख़ूबी है यहाँ मुशायरा कभी हिन्दू-मुसलमान नहीं बन पाया है, जितना प्यार यहाँ शायरी को हिन्दू दोस्तों से मिला है, जितनी ख़िदमत वो उर्दू की कर रहे हैं, उतनी वो भी नहीं कर रहे हैं जो उसे सिर्फ़ अपना कहकर उसका नुक़सान पहुँचाते रहे हैं। इंदौर में जो बड़े मुशायरे होते हैं, उनके मंच देख लीजिए, कभी उस पर शरद डोसी लिखा होता है, कभी अरविंद मँडलोई। सुभाष खंडेलवाल और संतोष सिंह इसी क़तार के नाम हैं, जो अदब की ख़िदमत के लिए आगे खड़े रहते हैं, सुनने वाले भी ऐसे ही ज़्यादा हैं। जब ये सब हैं तो मैं मुतमईन हूँ कि मेरे शहर के मुशायरों की रिवायत सही हाथों में है।

जो हाल उर्दू का मुशायरों में है, वही फ़िल्मों में भी हो गया है।



राहत साहब और महेश भट्ट

राहत इन्दौरी जहाँ गये, कामयाब रहे। मुशायरे के डायस पर पहुँचे तो सिर्फ़ वही दिखे, मुशायरे का रुख़ बदल दिया। जहाँ रुक-रुककर, ठहरकर धीमी आवाज़ में पढ़ा जाता था, वहाँ पहली बार किसी ने गरजने की हिम्मत की। जिसे शुरूआत में बेतमीज़ कहा गया, पर बाद में कई इसकी कॉपी करते नज़र आये और राहत इंदौरी का अंदाज़ मुशायरे की ज़रूरत बन गया। जब मुम्बई पहुँचे, वहाँ भी गरजना नहीं छोड़ा। वो काम किया जो आज भी सुना जाता है। जिन्होंने कम वक़्त में अच्छे और मक़बूल गाने लिखे, उनमें राहत इन्दौरी सबसे ऊपर हैं। जिस मुम्बई में पैर जमाने के लिए मशक़्क़त करना पड़ती है, आसमान को छत बनाना पड़ता है, वहाँ राहत इन्दौरी काम माँगने नहीं गये, काम ख़ुद उन तक आया, उन्हें बुलाया गया और जब तक उन्हें लगा मेयार बरक़रार है, तब तक काम किया और जब मेयार की कुर्सी हिलने लगी तो वापसी में पल नहीं लगाया। ऐसे गाने रच दिये जो तब तक सुने जाते रहेंगे, जब तक सिनेमा में गाने रहेंगे। राहत इन्दौरी का फ़िल्मी सफ़र भी दिलचस्प रहा है और कामयाब भी।

इस सफ़र पर सुनाने के लिए राहत इन्दौरी के पास बहुत है। मुशायरे की शोहरत के बाद उनका मुक़ाबला फ़िल्मी शोहरत से था, जो हिन्दुस्तानी ज़हन पर छायी हुई है। राहत इन्दौरी ने इस चैलेंज को क़ुबूल किया और जो शोहरत मुशायरे में हासिल की थी यहाँ उसे बरक़रार रखा। सच को क़ुबूल करने में इस इन्दौरी शायर के पास ग़ैरमामूली जुर्रत है, तभी तो आसानी से कह देते हैं- "मुझे भी शोहरत की भूख थी,

फ़िल्मों के ज़रिये नाम कमाना चाहता था, लेकिन भूख उस वक़्त परवान चढ़ी, जब मुझे काम मिला, मेरे गाने पसंद किये गये। जब तक मैं मुम्बई नहीं गया था ये शहर मेरे ज़हन में नहीं था। अगर कोई कहता है, उसे शोहरत पसंद नहीं है, वो सच से दूर है और अगर मैं इंकार करूँगा, झूठ होगा। मेरा ही शेर है-

अगर ख़्याल भी आए कि तुझको ख़त लिक्खूँ
तो घोंसलों से कबूतर निकलने लगते हैं

बुलंदियों का तसव्वुर भी ख़ूब होता है
कभी-कभी तो मेरे पर निकलने लगते हैं

अब राहत इन्दौरी अपने फ़िल्मी सफ़र की रूदाद शुरू करते हैं- "मैं इंदौर के इस्लामिया करीमिया में पढ़ाता था, मुशायरे भी लगातार पढ़ रहा था। फ़िल्मी गानों से लगाव था, लेकिन सिनेमा से दूर था। कभी उस तरफ़ जाने का सोचा नहीं था, क्योंकि मैंने तय कर रखा था, सिर्फ़ शायरी करूँगा, फ़िल्मी गाने नहीं लिखूँगा। इन्हीं दिनों मेरे दोस्त जो ट्रांसपोर्टर थे, मुझसे मिलने आये। मेरे हाथ में गुलशन कुमार का नम्बर रख दिया। कहा- आपसे बात करना चाहते हैं, ज़रूरी है कर लीजिएगा। चूँकि मुझे उधर का रुख़ करना नहीं था इसलिए मैंने नम्बर तो जेब में डाला, पर बात ज़हन से निकाल दी। दो दिन बाद वो फिर मेरे सामने खड़े थे। कहने लगे आपने बात नहीं की, वो ज़रूरी में मिलना चाहते हैं। मैंने सोचा बात करने में कोई हर्ज़ नहीं है। पता चला उन्हें मेरी पुरानी ग़ज़ल का मतला पसंद आया था और उनके काम का दिख रहा था-
झील अच्छा है, कंवल अच्छा है, जाम अच्छा है
तेरी आँखों के लिए कौन-सा नाम अच्छा है

फोन मिलाया तो गुलशन कुमार बोले- इन्दौर से मुम्बई आने का जो भी पहला ज़रिया है, उसे इस्तेमाल कीजिए, आ जाइए। फ़िल्म 'शबनम' बना रहे थे। उन दिनों मुझे पाँच-सात मुशायरे पढ़ना थे। पंजाब की ओर सफ़र था। मैंने गुलशन कुमार से कहा- मुझे कुछ मुशायरे पढ़ना हैं, हफ़्ते-दस दिन में मुलाक़ात करता हूँ। गुलशन कुमार जल्दी में थे, बोले- जो आपका नुक़सान होगा अदा कर देंगे, आप आ जाइए। मैं पहुँच गया। देखा... उनके दफ़्तर के बाहर क़तार लगी थी। ऊपर दफ़्तर था। मेरे साथ क़व्वाल दोस्त अख़्तर आज़ाद थे। उनसे मेरी बात हो चुकी थी। मुझे सीधे अन्दर ले गये। कुछ देर में गुलशन कुमार सामने थे।

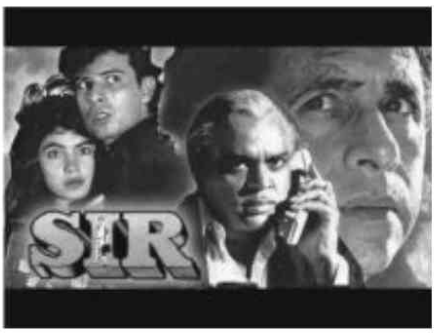
कहने लगे- आपके पास हमारे लिए क्या है? मैंने कहा- मेरे पास... आपके लिए एक लाइन भी नहीं है, जो है आपके काम का नहीं है, लेकिन हाँ, वादा करता हूँ, अगर मुझे वक़्त मिले, बताया जाए क्या करना है, तो वो कर सकता हूँ, जो कोई नहीं कर सकता। मेरा अन्दाज़ उन्हें पसंद आया। उसके बाद उन्होंने मुझे अपनी कार में बिठाया। मैं और अख़्तर आज़ाद पीछे वाली सीट पर बैठे। गाड़ी गुलशन ने चलायी। पास

में अनुराधा पोडवाल बैठी थीं। उन दिनों फ़िल्म 'सड़क' के गाने मक़बूल हुए थे। कार में गुलशन कुमार ने 'सड़क' के गाने बजाना शुरू कर दिये और कहा- सुनिए! बस ऐसे ही गाने लिखना है। मैंने कहा- लिख दूँगा। कोई आठ-दस दिन मैं वहाँ रुका, चौदह गाने लिख दिये। अनुराधा पोडवाल ने उसे रिकॉर्ड किया और उस एलबम को 'आशियाना' नाम दिया गया। एवज़ में अच्छा खासा पैसा मिला। मैं लौट आया।

हाँ, जाते वक़्त की एक बात रह गयी। जब मुझे गुलशन कुमार से मिलने मुम्बई जाना था, तो मैं इस्लामिया करीमिया के ज़िम्मेदार हलीम ख़ान से मिला। उनको मुम्बई का हाल सुनाया। बोले- कितने महीने से तनख़्वाह नहीं मिली? मैंने कहा दो-तीन महीने से कुछ नहीं मिला है। (राहत इन्दौरी कहते हैं, अब तो शायद महीनों की तादाद बढ़ गयी होगी।) हलीम खान ने मेरी बात सुनी, अकाउंटेंट साबिर को फोन लगाकर कहा- राहत का जो भी बक़ाया है, अदा कर दो। फिर उन्होंने मुझे मुम्बई जाने के लिए दुआएँ भी दीं। गुलशन कुमार के लिए मैंने जो गाने लिखे थे, कुछ इस्तेमाल हुए, कुछ अन्नू मलिक के हाथ लग गये। उन दिनों अन्नू के हालात ठीक नहीं थे। वापसी के लिए कशमकश का दौर था, काम की तलाश थी। वो अख़्तर आज़ाद के पास पहुँच गये। कहा- मुझे राहत इन्दौरी से मिलना है। मैं फिर मुम्बई पहुँच गया। इस बार अन्नू मलिक सामने थे, जो महेश भट्ट की फ़िल्म 'सर' कर रहे थे। कहने लगे सारे गाने हमने क़तील शिफ़ाई से लिखवा लिये हैं, बस टाइटल सॉन्ग आपको लिखना है... और मैंने गाना लिखा-

आज हमने दिल का हर क़िस्सा तमाम कर दिया
ख़ुद भी पागल हो गये, तुमको भी पागल कर दिया





गाना ख़ूब मक़बूल हुआ। बिनाका गीतमाला में कई दिनों तक आख़िरी पायदान पर रहा, क्योंकि यहाँ जो सबसे आख़िरी में बजता था, वही सबसे मक़बूल होता था। बस, लिखने का सिलसिला शुरू हो गया। उस ज़माने में पैसों की ज़रूरत हुआ करती थी, शोहरत भी पीछे लगी रहती थी... अख़बारों में छपना शुरू हो गया था। गाने हिट हो रहे हैं और बस, मेरे पर निकलने लगे। सब कुछ नया था, मज़ा दे रहा था। अन्नू मलिक ने लिंकन रोड की रॉयल-इन होटल में मुझे कमरा दिया। काम

चलने लगा। हर तीसरी फ़िल्म में मेरा गाना था। कम वक़्त में जितने गाने मैंने लिखे हैं, उतने किसी और के हिस्से नहीं आये। पैसे कमाये, मोहब्बतें भी कमायी, नामचीन लोगों के साथ काम किया, लेकिन जिस तरह से उर्दू मुशायरे बरबाद हो गये, वैसे ही फ़िल्मीं गाने भी ख़त्म हो गये हैं। 'ढिंकाचिका-ढिंकाचिका' आ गया है, शीला और मुन्नी की जवानी ने क़ब्ज़ा कर लिया है। उसके बाद मैं वहाँ कैसे रुक सकता था। यहीं राहत इंदौरी शेर सुना देते हैं-

मैं जाहिलों में भी लहजा बदल नहीं सकता
मेरी असास यही शीन-क़ाफ है जानी

फिर, इधर मुशायरा भी महँगा होता चला गया। गाने में वक़्त बहुत ख़र्च होता था। नये-नये लोग आ गये थे, कोई भी राय दे देता था। डायरेक्टर-प्रोड्यूसर के ड्राइवर के पास भी आपके लिए राय थी, वो कभी भी कह सकता था, बॉस मज़ा नहीं आया। एक प्रोड्यूसर कहीं से मुखड़ा लेकर आ गये, कहने लगे राहत भाई इसे पूरा कर दीजिए। मैंने देखा, ग़ालिब का मिसरा था... कहा, कैसे हो सकता है, ग़ालिब का है। तो कहने लगे- जहाँ कहीं हो, लेन-देन कर लो, पर लेना तो यही है। अब जहाँ हालात ऐसे हों वहाँ काम कैसे किया जा सकता है। एक गाना रिकॉर्ड करने में पन्द्रह-बीस दिन लगते और पचास-साठ हज़ार रुपये मिलते, इतने तो मुशायरे की एक रात में मिलने लगे थे, इसलिए मुशायरे की तरफ रुझान बढ़ा, पर वजह पैसा नहीं था, बल्कि गानों का जो मिज़ाज बदल रहा था, वो मुम्बई में रहने की इजाज़त नहीं दे रहा था।

इस फ़िल्मी सफ़र में अच्छे लोगों से भी मिलना हुआ। जब मैं उनकी तरफ देखता हूँ तो महेश भट्ट और विधु विनोद चोपड़ा दिखायी देते हैं। महेश भट्ट में शायरी की समझ है, काम करने की छूट देते हैं। विधु विनोद चोपड़ा भी समझ रखते हैं। मैंने उनके साथ 'क़रीब', 'मिशन कश्मीर' और 'मुन्ना भाई एमबीबीएस' की थी। 'मिशन कश्मीर' का टाइटल सॉन्ग 'धुआँ-धुआँ' मुझे याद है, जिसमें मुकम्मल शायरी थी। शंकर महादेवन ने रिकॉर्ड किया था और लोगों को ख़ूब पसंद आया था। फ़िल्मी नगरी में ऐसे लोग भी मिले, जिनके पास समझ की कंगाली थी। माधुरी दीक्षित के सेक्रेटरी हुआ करते थे राकेश नाथ। फ़िल्म बना रहे थे, मैं उसके गाने लिख रहा था। रात दो बजे उनका फोन आया, कहने लगे- जो आपने गाना लिखा है, वो बहुत अच्छा है, अगर उसमें 'नवरत्न' आ जाए तो मजा आ जाए। मेरी हैरत का ठिकाना नहीं था कि इस गाने में 'नवरत्न' कहाँ से लाऊँ। मैंने



वजह पूछी तो कहने लगे- जो मेले का सेट लगाया है, जहाँ हीरोइन नाचने वाली है, वहाँ 'नवरत्न तेल' के कई बैनर लगा दिये गये हैं, वो सब कैमरे में आएँगे, अगर गाने में 'नवरत्न' आ जाए तो फिर तेल वाले का तेल निकालना आसान हो जाएगा। असल में उन्होंने विज्ञापन के पैसे ले लिये थे और गाने में 'नवरत्न' डालकर उसे बढ़ाना चाहते थे।

मैंने ए.आर. रहमान के साथ भी काम किया। मक़बूल फ़िदा हुसैन की फ़िल्म थी। तजरिबा अच्छा रहा। फ़िल्मों में अच्छे लोग भी हैं और ऐसे भी हैं जो ख़ुसरो, ग़ालिब, मीर सुना देते हैं। अन्नू मलिक ने एक मुखड़ा सुनाया। लाजवाब था। मैंने कहा बहुत अच्छा है। कहने लगे हसरत साहब का है, अब उनसे लिखा नहीं जाता, मैं चाहता हूँ इसको आप मुकम्मल गाना कर दें, उसका पैसा हम हसरत साहब तक पहुँचा दें तो उनकी मदद हो जाएगी। मैंने फ़ौरन हाँ की, उसको मुकम्मल किया। पैसा हसरत साहब तक पहुँच गया। मुझे ख़ुशी है मैं उनके कुछ काम आया। अभी आख़िरी में मैंने जो गाना लिखा, फ़िल्म थी 'गली-गली चोर है'। क़ैसर-उल-जाफ़री के भानजे रूमी जाफ़री की फ़िल्म थी। मुझे बुलाया, कहा मैं चाहता हूँ इसके लिए आप ही गाने लिखें, क्योंकि मैं जो चाह रहा हूँ, वो आप ही लिख सकते हैं। मैंने लिखे भी, पसंद भी किये गये। अब फ़िल्मों में मज़ा नहीं आता। जितना भी वक़्त फ़िल्मों में गुज़रा, अच्छा गुज़रा। अफ़सोस! यहाँ भी उर्दू की वही हालत है जो मुल्क में हो गयी है। फिर हमारे घर में भी उर्दू बुरे हाल में है, ऐसे में फ़िल्में कैसे बाक़ी रह सकती हैं। एक वक़्त था जब हिन्दी अौर उर्दू के जीनियस फ़िल्मों में हुआ करते थे, अब कोई नहीं है, तो न हिन्दी बची है, न उर्दू दिखायी दे रही है। घटिया और बकवास लोग आ गये हैं तो गाने भी वैसे ही आ रहे हैं। जब मुशायरों में उर्दू वाले नहीं हैं, वहाँ ताली के लिए कुछ भी किया जा रहा है, फिर फ़िल्मों में उर्दू कैसे ज़िंदा रह सकती है। पहले जितने भी फ़नकार यहाँ आये हैं, हिंदी-उर्दू मंच से ही आये हैं और अब वही मंच उजड़ता जा रहा है तो यहाँ उसका असर दिखने लगा है। अगर मुझे सलाrके का कोई ऑफ़र आता है, काम कर सकता हूँ। जहाँ आज़ादी हो ऐसा काम हो, जो मुल्क पसंद करे। मैं मुम्बई में ज़्यादा नहीं रहा, पर

उससे प्यार हो गया था। कमाल का शहर है, हमेशा फ़न की क़द्र करता है और फ़नक़ार को कभी भूखा नहीं मारता। जब मुम्बई में था, लिखा था-

बूढ़े हुए यहाँ कई अय्याश बम्बई
तू आज भी जवान है शाबाश बम्बई

पूछूँ कि मेरे बच्चों के ख़्वाबों का क्या हुआ
मिल जाए बम्बई में कहीं काश बम्बई

दिल बैठते हैं दौड़ते घोड़ों के साथ-साथ
सोने की फ़स्ल बोती है क़ल्लाश बम्बई

दो गज़ ज़मीन भी न मिली द़फ्न के लिए
घर में पड़ी हुई है तेरी लाश बम्बई

हर शख़्स आ के जीत न पाएगा बाज़ियाँ
उलटे छपे हुए हैं तेरे ताश बम्बई

इस शहर में ज़मीन है महँगी बहुत मगर
घर की छतों पे रखती है आकाश बम्बई

वैसे एक बात जान लीजिए... काम का इंकार कर मुम्बई नगरी से कम ही गये हैं, जो यहाँ आया है यहीं का होकर रह गया है। पर मैंने उस वक्त मुम्बई छोड़ी, जब मेरे पास काम था, लेकिन ऐसा नहीं था जिसे मैं कर सकता था। मेरे वहाँ से आने के बाद भी काम आता रहा, मैं इंकार करता रहा। यक़ीनन मुझे अच्छे काम से कभी परहेज़ नहीं रहा है और उसकी तलाश रही है, पर सोचकर ख़ुशी होती है कि जिस शहर में पैर जमाने के लिए बड़े-बड़े फ़नकारों को ़फाक़े करना पड़े, सड़क पर रात गुज़ारना पड़ी, वहाँ मैं एक मिनट के लिए भी बेरोज़गार नहीं रहा हूँ।

जो फ़ैसला होगा यहीं पे होगा

पाकिस्तानियों को हमने सिखाया है मुशायरा पढ़ना...



पूरी दुनिया में घूमता क़लंदर

दोस्त अनीस क़ुरैशी गये थे पाकिस्तान। वहाँ रेल में सफ़र कर रहे थे। सामने बैठे बंदे से उनकी बात हुई। अनीस ने बताया हिन्दुस्तान से आया हूँ, फिर अपने शहर इंदौर का नाम लिया। सामने से आवाज़ आयी- "क्या राहत इंदौरी का शहर है?" अनीस की आँखें खुल गयीं। उसने कंधे फ़ैलाये, आवाज़ को एक्सीलरेटर दिया और कहा- "हाँ, उन्हीं का शहर है।" वो उठकर क़रीब आ गया, बोला- क्या राहत इंदौरी को जानते हो? क्या तुमने उन्हें देखा है? अनीस ने हाँ में गर्दन हिलायी, उसके बाद सन्नाटा था। अब वो अनीस से ऐसे मिल रहा था जैसे राहत साहब से मिल रहा हो। इससे समझा जा सकता है सिर्फ़ हिन्दुस्तान ही नहीं पाकिस्तान में भी राहत इंदौरी को किस तरह पसंद किया जाता है और दीवानगी का क्या हाल है।

जैसे सितारों की गिनती मुमकिन नहीं, वैसे ही राहत इन्दौरी ने कितने मुशायरे पढ़े, गिना नहीं जा सकता। शायद इस दौर में उनसे ज़्यादा किसी ने मुशायरे नहीं पढ़े होंगे। अगर इस दौर में कोई उनसे आगे नहीं है तो फिर पुराने दौर को भी शामिल किया जा सकता है, इस लिहाज़ से वो सबसे ज़्यादा मुशायरा पढ़ने वाले शायर कहे जा सकते हैं। मुशायरे के डायस को राहत इन्दौरी ने ताज़ा साँसे दी हैं और उस पर बरसों राज किया, जो अभी भी बरक़रार है। कुछ मुशायरे ऐसे हैं जो उनके साथ जुड़ गये हैं और जब भी उनके अदबी सफ़र का ज़िक्र होता है वो मुशायरे उछलकर सामने आ जाते हैं। कराची का वो मुशायरा सामने ही रहता है, जिसमें राहत इन्दौरी को आलमी शोहरत मिली थी और सरहद पार पता चला कि हिन्दुस्तान से ऐसी आवाज़-परवाज़ ले चुकी है, जो मुशायरों की

आवाज़ क़ही जा रही है। राहत इन्दौरी का पहला सरहद पार मुशायरा था, जो आज भी उनके ज़हन में ताज़ा है, क्योंकि पहली बार सरहद पार की थी और पहली बार में ही कामयाबी का साफ़ा सर पर था।

बात उन दिनों की है जब हिन्दुस्तानी शायर पाकिस्तान में ख़ूब सुने जा रहे थे। इस सिलसिले को आगे बढ़ाने राहत इन्दौरी भी कराची पहुँच गये। इस मंज़र को वो ऐसे बयाँ करते हैं जैसे कल की बात हो- "कराची के नेशनल स्टेडियम में मुशायरा था, अनवर जलालपुरी, मेअराज फ़ैज़ाबादी और मंज़र भोपाली साथ थे। कुँवर महेन्द्र सिंह बेदी भी थे। इनके अलावा कई शायर थे। पाकिस्तानी शायरों के लिए पाकिस्तानी नाज़िम था। हिन्दुस्तानियों को बुलाने का काम अनवर जलालपुरी के हवाले था। मुशायरा ख़फ़्तार से चल रहा था। स्टेडियम में बीस हज़ार से ज़्यादा लोग थे। अनवर जलालपुरी ने मुझे इशारा



इंदौर की एक नशिस्त के दौरान

किया। मैं तैयार था। पहली बार पड़ोसी सामईन के सामने खड़ा था। पाकिस्तान में मुहाजिरों की हालत ख़राब है। वो हैं जो आज़ादी के बाद हिन्दुस्तान छोड़कर पाकिस्तान गये थे और आज तक मुहाजिर हैं... जबकि हम हिन्दुस्तान में रहकर हिन्दुस्तानी हैं और ये अल्लाह का शुक्र है। जो आज़ादी के बाद भी मुहाजिर थे... और जब मैं मुशायरा पढ़ने गया तब भी मुहाजिर थे, अब भी हैं। मेरे ज़हन में चौदह सौ साल पुरानी हिजरत थी, जो मक्का से मदीना के लिए हुई थी... उसी को ज़हन में रखकर मैंने कहना शुरू किया।

ख़ून आँखों के चराग़ों में सजा लो वरना
तीरगी शहर से रुख़सत नहीं होने वाली

साथ चलना है तो तलवार उठा मेरी तरह
मुझसे बुज़दिल की हिमायत नहीं होने वाली

मेरे ल़फ्ज़ पाकिस्तानी मुहाजिरों से टकरा गये। इत्तेफ़ाक़ था, मैंने जानबूझकर नहीं किया था, पर चिपक रहे थे। माहौल गरमा रहा था,

बेचैनी बढ़ रही थी। दाद में इज़ाफ़ा था और जैसे ही मैंने अगला शेर पढ़ा-

अब के जो फ़ैसला होगा वो यहीं पे होगा
हमसे अब दूसरी हिजरत नहीं होने वाली।

स्टेडियम गूँज उठा। खड़े होकर लोग तालियाँ बजा रहे थे। दाद से मेरी झोली लबरेज़ थी। मेरा पहला पाकिस्तानी मुशायरा आसमान छू रहा था। दूसरे दिन 'जंग' जैसे अख़बार ने इसी शेर को सुर्ख़ी बनाया। जो पाकिस्तान में मिला वो आज भी याद है। इसके बाद ख़ैर पाकिस्तान आना-जाना लगा रहा, लेकिन जब मैं कुछ साल पहले इसी स्टेडियम में मुशायरा पढ़ने पहुँचा तो तब्दीली थी। जो पाकिस्तान अदब की बात करता था, वहाँ दहशतगर्दी थी, बम थे, बारूद था। यही वजह थी कि सिर्फ़ दस साल में कराची के नेशनल स्टेडियम में सुनने वाले हज़ारों से सिमटकर पाँच-सात सौ बचे थे। वजह सियासी हालात थे, जो सुधरने का नाम नहीं ले रहे हैं।

अगर हमारे यहाँ मुशायरा दम तोड़ रहा है तो पाकिस्तान में भी मुशायरा ख़त्म हो चुका है। वो तो पड़ोसी शायरों को हिन्दुस्तान आकर पता चला, मुशायरा क्या होता है। हमारे शायरों ने वहाँ जाकर बताया कैसे पढ़ा जाता है, वरना वहाँ सब एक जैसा पढ़ते हैं। सीधा-सीधा सुनाते थे। भीड़ के मुशायरे नहीं होते, किसी पैसे वाले की कोठी पर कुछ लोग जमा होते, खाने का इन्तेज़ाम होता, शायरी हो जाती। जब उन्होंने हिन्दुस्तान में आकर मुशायरे देखे तो बदलाव आया। लेकिन मुशायरे की रिवायत वहाँ भी कमज़ोर होती जा रही है। कहना पड़ेगा शायरी ज़िन्दा है। वो हिन्दुस्तानी शायरी से आगे हैं, क्योंकि मुशायरे कमज़ोर हुए हैं, अदब और उर्दू ताक़त में है। उर्दू उनकी सरकारी ज़बान है इसलिए वहाँ कितना ही दक़ीक़ शेर पढ़ दीजिए, आपको दाद ज़रूर मिलेगी। हमारे यहाँ अगर एक ल़फ्ज़ भी गाढ़ा हो जाए तो शेर बिना दाद के लौट आता है।

मुशायरों की जो रिवायत रही है, वो वहाँ अभी खुले में साँस ले रही है, जबकि हमारे यहाँ सब कुछ टूट-फूट गया है। पाकिस्तान में उर्दू का साथ देने वाली सारी ज़ुबानें ज़िन्दा हैं, पर मैं दोहराऊँगा, उन्हें मुशायरा क्या होता है, हमने सिखाया है। पाकिस्तानियों को तरन्नुम से भी परहेज़ है और इसे वो दूसरे पायदान पर रखते हैं, हक़ीर समझते हैं। मुझे लगता है ऐसा करके ग़लती नहीं करते... फिर भी अगर किसी के पास गला है, उसका इस्तेमाल कर रहा है, तो ग़लत नहीं है। लेकिन गले पर अक्सर पराये ल़फ्ज़ों की हुकूमत चलती है... हालाँकि सब जगह ऐसा नहीं है; बड़े-बड़े शायर हैं, जिनके पास अपना गला और अपने ल़फ्ज़ हैं।"

राहत इंदौरी सिर्फ़ पाकिस्तानी शायरी और मुशायरों का ही ज़िक्र नहीं करते हैं; सरहद पर जो तनाव है, हालात बिगड़ रहे हैं और जिस तरह से आतंक की ख़बरें रोज़ आ रही हैं, उससे बैचेन भी हैं। इसके लिए जहाँ सियासत को ज़िम्मेदार ठहराते हैं, वहीं पाकिस्तान की नीयत पर भी

सवाल लगाते हैं। राहत इंदौरी को लगता है जिस आतंक को पाकिस्तान ने खड़ा किया था, वही अब उसे खा रहा है और सिर्फ़ पाकिस्तान के लिए ही नहीं, दुनिया के लिए अच्छी ख़बर नहीं है। पाकिस्तान को भी आईना दिखाने से वो चूकते नहीं हैं। शेर सुनाते हैं-

जो तौर है दुनिया का उसी तौर से बोलो
बहरों का इलाक़ा है ज़रा ज़ोर से बोलो

दिल्ली से हम ही बोला करें अम्न की बोली
यारो कभी तुम लोग भी लाहौर से बोलो

राहत इंदौरी कहते हैं- "दोनों मुल्कों के बीच अगर सब कुछ ठीक रहे, मोहब्बत का रिश्ता ज़िंदा हो तो फ़नकार से ज़्यादा ख़ुशी किसे हो सकती है, लेकिन कुछ न कुछ ऐसा होता है, जो बेचैनी पैदा कर देता है। हमारी तरफ़ से हमेशा ईमानदार कोशिश होती है, पर जवाब वैसा नहीं मिलता। सियासत ने रिश्तों के साथ ज़्यादती की है-

सरहदों पर बहुत तनाव है क्या
कुछ पता तो करो चुनाव है क्या

मिलाना चाहा है इन्साँ को जब भी इन्साँ से
तो सारे काम सियासत बिगाड़ देती है

राहत इंदौरी ने पाकिस्तान-डे पर कराची में 22 मार्च 2017 को होने वाले इंटरनेशनल मुशायरे में शामिल होने की दावत ठुकरा दी थी। हालाँकि इस तारीख़ को भारत में अपनी मसरूफ़ियत का हवाला देते हुए पाकिस्तान से इंकार किया था, लेकिन कई मतलब निकाले गये और मौक़े पर राहत इन्दौरी ने पाकिस्तान को सीख भी दे दी थी। उनका कहना था- "पड़ोसी मुल्कों के बीच तनाव घटाने के लिए पाकिस्तान को पहल करते हुए ईमानदार क़दम उठाने चाहिए। मैंने भारत में क़रीब दो महीने पहले से तय अपने जलसे की वजह से कराची की ग़ैर सियासी ब़ज्म शहरे क़ाइद आलमी मुशायरा कमेटी का मुशायरे का न्यौता क़बूल नहीं किया था। मैं हिंदुस्तानी हूँ और मुझे हालात दिखायी देते हैं। मुझे कहीं जाने की ख़्वाहिश होती है और कहीं जाने की नहीं। पाकिस्तान से भाईचारे और ख़ुलूस के रिश्ते क़ायम किए जाएँ। मैं 1986 से अब तक पाकिस्तान में पन्द्रह-बीस मुशायरे पढ़ चुका हूँ, लेकिन हालात ऐसे बचे नहीं हैं कि सफ़र किया जाए।

जहाँ तक बात हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की है, अभी बतौर मुल्क उसे हमसे मुक़ाबला करने के लिए बहुत सीखना होगा और जो तंगी है, नफ़रत है, इसका नुकसान पाकिस्तान को ज़्यादा हो रहा है। इससे भी

इंकार नहीं किया जा सकता कि वहाँ अभी अदब ज़िंदा है और मुशायरों के साथ उर्दू भी मज़्बूत है, इतनी मज़्बूती हमारे यहाँ नहीं है।

पहली बार जब राहत इंदौरी पाकिस्तान से लौटे तो इंदौर में उनके लिए महाfफल तैयार थी। बात 21 दिसम्बर 1986 की है। हाथीपाला में एजी नागौरी रहा करते थे, उन्हीं के घर पर इंदौर के अदब वाले जमा हुए। अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू-ए-हिंद शाखा इंदौर के साथ अराकिन-ए-हम ख़याल की महफ़िल थी, जिसमें राहत इंदौरी को बुलाया गया कि बताइए पाकिस्तान का सफ़र कैसा रहा? वहाँ के क्या हालात हैं? उर्दू और अदब किस हाल में है। इस महफ़िल में अज़ीज़ इंदौरी, मेहमूद नश्तरी, फ़रियाद बहादुर और मक़सूद नश्तरी सहित और भी थे। राहत इंदौरी ने बताया किस तरह उन्हें मुशायरे में दाद मिली और वहाँ मुशायरे कैसे पढ़े जाते हैं।

पैसा बाँटने के लिए होता है

कैफ़ भोपाली के कहने पर राहत इन्दौरी ने
अपनी क़मीज़ उतारकर रिक्शा वाले को दे दी थी

राहत इन्दौरी के हिस्से जो पहली दाद आयी थी, वो कैफ़ भोपाली की थी; हालाँकि थोड़ी देर ही रही, पर इसने राहत इन्दौरी को कैफ़ के क़रीब कर दिया था। दोनों के रिश्ते तब तक ज़िन्दा रहे, जब तक कैफ़ भोपाली ज़िन्दा रहे। साथ थे, कई दिलचस्प बातें वजूद में आयीं और वो दास्तान राहत इन्दौरी सुनाते हैं- "लखनऊ में कैफ़ भोपाली और मैं घूमने निकल पड़े। साइकिल रिक्शा हमारी सवारी थी। तभी कैफ़ साहब ने देखा साइकिल रिक्शा वाला पसीने में तर है और जो क़मीज़ पहना था वो पीठ की तरफ़ से फटी थी। हमेशा की तरह कैफ़ साहब ज़ज्बाती हो गये, आँखों से आँसू निकल पड़े। आवाज़ बन्द हो चुकी थी। कुछ दूर चलने के बाद उन्होंने जो किया, उसने मुझे हैरत में डाल दिया। कैफ़ साहब ने उस फटी क़मीज़ को पूरा फाड़ डाला। मेरी तरफ घूरकर देखा और कहा- राहत! अपनी क़मीज़ इसे दे दो। पहले तो मैं समझ नहीं पाया, फिर बोला- कैफ़ साहब होटल पहुँचकर दे दूँगा, यहाँ बाजार में मुनासिब नहीं रहेगा। लेकिन कैफ़ साहब कहाँ मान रहे थे। जैसे-तैसे मैंने उन्हें समझाया और हमारी सायकल होटल तक पहुँच गयी। वहाँ उतरते ही मैंने रिक्शावाले को क़मीज़ दे दी। हम लोग कमरे में थे। कैफ़ भोपाली का चेहरा उतर चुका था। ग़मज़दा थे और अक्सर ऐसा होता था। वो ऐसे मंज़र देखकर ख़ुद पर क़ाबू नहीं रख पाते थे। मैं उनकी बहुत इ़ज्ज़त करता था और उनके कहने पर क़मीस क्या, कुछ भी उतारकर दे सकता था।

कैफ़ साहब के बारे में मशहूर था- जिस शहर में कैफ़ आ जाता है, शैतान का टलना आसाँ हैं, मेहमान का टलना मुश्किल है। मुझे याद है, कैफ़ साहब मुशायरे में इन्दौर तशरीफ़ लाये। आरएनटी रोड पर होटल जहाज़ महल थी, वहीं कैफ़ साहब को ठहराया गया। मुशायरा हो गया, पर वो इन्दौर से टले नहीं। यहीं घूमते रहे और नागपुर मुशायरे की तारीख़ आ गयी। बस का टिकट कराकर उनके हाथ में थमा दिया गया, लगा अब क़ैफ़ साहब जाने वाले हैं। हम लोग उन्हें लेने होटल पहुँचे, ताकि बस अड्डे तक पहुँचा दें। वहाँ पहुँचे तो देखा होटल स्टॉफ़ को शायरी सुना रहे हैं। जो वाह-वाह करता उसे दस रुपये देते जा रहे थे। मैंने पूछा, कैफ़ साहब चलें, बस का वक़्त हो गया है। बोले- टिकट ले लिया क्या? मुझे हैरत हुई। मैंने कहा- टिकट तो आपको दे दिया था न। बोले- नहीं भाई, उसे तो वापस करके पैसे मँगवा लिये थे, वही तो बाँट रहा था। मेरा अगला सवाल था- नज़राना तो महफ़ूज़ है न? धीमी आवाज़ में बोले- राहत तुम्हें मालूम होना चाहिए, पैसा रखने के लिए नहीं होता, हमने वो

भी लुटा दिये। मुझे हैरत नहीं थी... पता था कैफ़ साहब इसी मिज़ाज के हैं और ये बात तो मेरे मिज़ाज की भी थी।

इसी तरह मुझे भुसावल का मुशायरा याद आ रहा है, जिसके बाद शायरों की पूरी जमाअत बुरहानपुर के मशहूर पेंटर साहिबज़ादा आसिफ़ यार की मेहमान हुई। ख़ुमार साहब, नाज़िर ख़य्यामी, कृष्णबिहारी 'नूर', ताज भोपाली के साथ कुछ और शोअरा थे। हम सब शहर के बाहर आसिफ़ साहब के खेत पर पहुँचे। वहीं खाना पकाया। ख़ूब ख़ातिर हुई और पूरा दिन मस्ती में निकल गया। जब सूरज डूबने लगा, अँधेरा चढ़ा तो आम राय बनी, नहा-धोकर ही चला जाए। वहाँ का कुआँ ही ग़ुस्लख़ाना था। एक के बाद एक सब नहा रहे थे और सबसे आख़ीर में मेरी बारी आयी। सब चलने की तैयारी करने लगे। मुझे लगा कहीं निकल न जाएँ। मैंने चिल्लाकर कहा- ताज (भोपाली) साहब! मैं अभी आया रुकिएगा, निकल न जाइए। ताज साहब बोले- मियाँ तुम हो कहाँ? मैंने कहा- नहा रहा हूँ। बोले- दिख नहीं रहे हो, जरा साबुन तो लगाओ।

भुसावल से एक और वाक़या याद आया। मुम्बई की ट्रेन में बैठकर बग़ैर रिजर्वेशन भुसावल स्टेशन पर जुगाड़ में टहल रहे थे। रशीद अब्बास (टीटी) पर नज़र पड़ी, जो शकील बदायूँनी, ख़ुमार बाराबंकवी के दोस्त थे। हमारी भी उनसे दुआ-सलाम थी। मसला बताया। फ़ौरन हल हुआ। बोले- फ़लाँ कोच में मेरी सीट पर जाकर बैठ जाओ बाद में देखते हैं। थोड़ी देर बाद ट्रेन चली। खासा वक़्त हो गया। चेकिंग करते हुए आये। सामने वाली सीट पर एक सरदार साहब बैठे हुए थे। टिकट चैक करके उनसे पूछा, सरदार साहब पीने-खाने का इन्तेज़ाम है? सरदार तपाक से बोले- अरे हाज़िर है हुज़ूर, फ़िक्र नहीं। व्हिस्की की बोतल निकाली और रशीद अब्बास को थमा दी। उन्होंने छोटा-सा पेग अपने लिए और गिलास भरकर सरदार को दिया। ये अभी चुस्कियाँ ले ही रहे थे और उधर सरदार साहब पूरा गिलास गटक गये। फिर दूसरा, फिर तीसरा... देखते-देखते नशे में चूर सीट पर ढेर हो गये, फिर नीचे लुढ़क गये। रशीद अब्बास ने मुझसे कहा- बैठो राहत आराम से, ये मुम्बई तक नहीं उठेगा।

ख़ुमार साहब को रेल में ऊपर वाली बर्थ पर नींद नहीं आती थी और एक बार ऐसा हुआ कि नीचे वाली सीट पर मोटे सेठ विराजमान थे। उन्हें देखकर ख़ुमार साहब का मिज़ाज बिगड़ने लगा। मैंने उनसे दरख़्वास्त की। भाई साहब! हमारे साथी को तकलीफ़ है, उन्हें नीचे की बर्थ दे दीजिए। सेठ ने बुरा-सा मुँह बनाया। मैंने फिर इल्तिजा की। अब उसने खुलकर मना कर दिया। ख़ुमार साहब के पास ऊपर सोने के अलावा कोई चारा नहीं था। जैसे-तैसे वो चढ़ गये, लेट भी गये और नीचे सेठ ने ख़र्राटे लेना शुरू कर दिया। मुझे ठीक नहीं लग रहा था। बेचैनी में वहीं टहलने लगा, बड़बड़ाने लगा। थोड़ी देर तक सेठ सुनता रहा, फिर तंग आकर कहने लगा- क्या हुआ सो तो रहे हैं। मैंने कहा- सेठजी, मसला ये नहीं है, उनके साथ बात दूसरी है, नींद लगते ही पेशाब कर लेते हैं। अब सेठ हड़बड़ाया। सबसे पहले उसने कम्बल और कपड़े देखे, कहीं गीले तो नहीं हो गये। फिर सीट से खड़ा हो गया और कहने लगा, आप उन्हें नीचे

बुला लीजिए, मैं ऊपर चला जाता हूँ। ख़ुमार साहब तो ख़ैर जाग ही रहे थे, फ़ौरन नीचे आ गये और जितनी देर में वो नीचे, उतनी ही देर में सेठ ऊपर पहुँच गया।''

एक क़िस्सा अहमद निसार सुनाते हैं। कलकत्ता में मुनव्वर राना का मुशायरा था। लम्बी फ़हरिस्त थी। जब मेरे पढ़ने की बारी आयी, राहत इंदौरी ने कहा फ़हरिस्त तवील है, निसार तुम ऐसा करना चार शेर पढ़कर बैठ जाना। बात मुनव्वर राना भी सुन रहे थे। मैं माइक पर पहुँच गया। उदार, राहत इंदौरी और मुनव्वर राना के बीच शर्त लग गयी। राना बोले, राहत तेरा पट्ठा चार से ज़्यादा शेर पढ़ेगा। राहत इंदौरी कहने लगे नहीं चार से ज़्यादा नहीं पढ़ेगा, मैंने उसे कह दिया है। शर्त यह तय रही कि अगर एक शेर ज़्यादा पढ़ा तो पाँच सौ रुपये राहत इंदौरी के पेमेंट में से कट जाएँगे और हर शेर के साथ पाँच सौ रुपये कटेंगे। मैंने अठारह शेर पढ़ दिये और मुनव्वर राना ने राहत इंदौरी से कहा अब तो तुम्हारा पेमेंट बचा ही नहीं है, कुछ माँगना मत। तो राहत इंदौरी का जवाब था- ''अभी मैंने नहीं पढ़ा है।''

अनवर जलालपुरी ने कराया एम.ए.

पढ़ने का जो मज़ा बचपन में था,
अभी भी है



राहत इंदौरी और अनवर जलालपुरी

राहत इन्दौरी ने मुशायरे के ज़रिये दुनिया नापी है। कहा जाता है, सबसे ज़्यादा सफ़र करने वाले शायर राहत इन्दौरी ही हैं। जब आप उनके तालीमी सफ़र पर नज़र डालते हैं, तो यहाँ भी सफ़र दिखायी देता है; उतना ही कामयाब, जितना शायराना है। उनकी वाल्दा पढ़ी-लिखी ख़ातून थीं, इसलिए तालीम की अहम्मीयत से वाक़िफ़ थीं। बेटे को जल्द ही उन्होंने क़लम और किताब की अहमियत समझा दी। हालात तंग थे, लेकिन तालीम खुली थी। यही वजह है स्कूल बदलते रहे, पर कॉपी-किताबें मोटी होती गयीं। शुरूआती तालीम के लिए उन्हें इन्दौर के नयापुरा सरकारी स्कूल में पहुँचाया गया, पर ज़्यादा दिन नहीं रुके। बड़वाली चौकी के सरकारी स्कूल में दाख़िला हो गया और यहाँ भी टिक नहीं पाये। देवास के स्कूल में बस्ता टँगने लगा। नाना उन्हें साथ ले गये थे। तीन साल वहीं पढ़ाई की। मीडिल पास कर लिया। इन्दौर लौट आये और अब उनका तालीमी मदरसा नूतन स्कूल हो गया। यहाँ से स्कूली तालीम ख़त्म होती है और आर्ट्स एण्ड कॉर्मस कॉलेज से बी.ए. पूरा होता है, साथ-साथ माँ का सपना भी चलता है, जो तब देखा गया था जब राहत इन्दौरी ने घुटनों से चलना शुरू किया था। अब थोड़ी रुकावट आती है और बीए को मुकम्मल मान लिया जाता है।

शायरी शुरू हो जाती है, कामयाबी भी दौड़ने लगती है, पर अन्दर तालीम करवटें लेती रहती है, एम.ए. के लिए उकसाती है और इस काम को अंजाम देते हैं अनवर जलालपुरी। अवध युनविर्सिटी से वो राहत इन्दौरी को एम.ए. करा देते हैं। करवटें अभी भी जारी है। अब वो

पीएचडी की तरफ़ इशारा करने लगती हैं। इसके लिए राहत इन्दौरी भोपाल की बरकतउल्लाह युनिवर्सिटी का इंतख़ाब करते हैं। डॉक्टरेट मिलती है और पीएचडी का मौज़ूअ होता है- उर्दू अदब की तऱ्क़ïकी में मुशायरों का किरदार। मौज़ूअ राहत इन्दौरी की ज़िन्दगी के साथ चलता है और उर्दू के लिए मुशायरे कितने खास हैं, उनसे बेहतर कौन बता सकता है। राहत इन्दौरी कहते हैं- "शुरू से ही पढ़ने में मज़ा आता था और बचपन के उस मज़े का अभी भी मज़ा ले रहा हूँ। इसके लिए वक़्त निकाल लेता हूँ और अगर खोज की जायेगी, किसने सफ़र में सबसे ज़्यादा पढ़ा है, तो मेरा नम्बर लग सकता है। पीएचडी के लिए मैंने मौज़ूअ जानबूझकर चुना और मैं अक्सर कहता हूँ कि उर्दू अदब को ज़िन्दा रखने में मुशायरों ने म़ज्बूत किरदार निभाया है। उर्दू और अदब नदी के दो किनारे हैं, जो साथ चल रहे हैं। मुशायरों के बग़ैर उर्दू का तसव्वुर अधूरा है। दि़क़्ïकत ये है कि नयी नस्ल ने मान लिया है कि शायरी के लिए तालीम ज़रूरी नहीं है, तभी तो डायस पर वो दिखने लगे हैं जिन्होंने स्कूल तक नहीं देखा है और न वो इल्म की अहम्मीयत से वाक़िफ़ हैं। हालाँकि फ़न कभी भी मक्तब का मोहताज नहीं रहा है। याद रखना चाहिए, अच्छा लिखने और बोलने के लिए पढ़ना बहुत ज़रूरी है।

अनवर जलालपुरी मेरे अज़ीज़ थे, ख़याल रखते थे। बरसों उनका साथ रहा। उनका जाना मेरा ज़ाती नुक़सान है। मुझे भी याद नहीं, कितने मुशायरों में उन्होंने मुझे माइक पर बुलाया, लेकिन हर बार लगता था नये अंदाज़ से पुकार रहे हैं। उनके जाने से यक़ीनन मुशायरे के डायस से निज़ामत चली गयी है। उन्होंने ही मुझे एमए कराया था। मुझ पर उनका एहसान है। आज भी जब किसी नाज़िम की तरफ़ मैं देखता हूँ, अनवर भाई नज़र आ जाते हैं।

मुनव्वर में वो सारी ख़ूबियाँ हैं, जो दोस्त में होना चाहिए

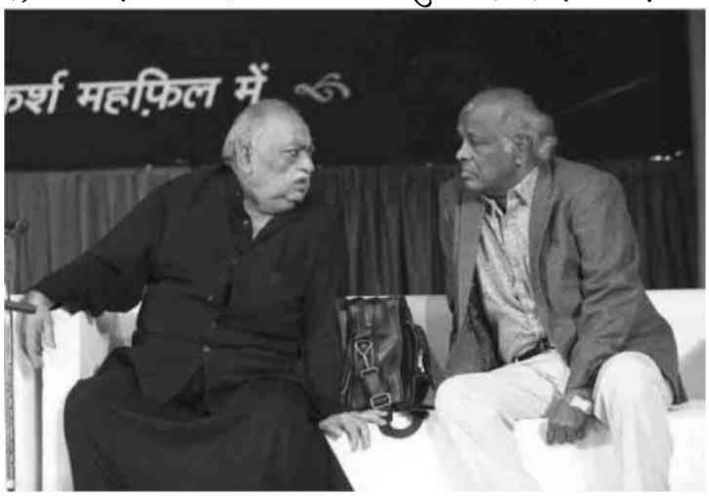
सैय्यद अनवर अली राना कहा करते थे,
मेरे दो बेटे शायर हैं, एक मुनव्वर राना और दूसरा राहत इन्दौरी



दो गहरे दोस्त : राहत इंदौरी और मुनव्वर राना

शोअबा कोई हो, बराबर के कलाकारों, फ़नकारों, अदीबों के बीच कशमकश रही है या खड़ी कर दी गयी है। इससे मुनव्वर राना और राहत इंदौरी भी बच नहीं पाये हैं। शायरी के इस दौर में जहाँ खड़े हैं, वहाँ जो ल़फ्ज़ राहत इंदौरी के लिए इस्तेमाल किये जा सकते हैं, उनको मुनव्वर राना के साथ भी लगाया जा सकता है। इनके रिश्ते दोस्ताना रहे हैं, इतने कि उनकी मिसाल दी जाती रही है... पर इसमें नींबू ़निचोड़ा गया है। इससे इंकार नहीं है कि नींबू को इन दोनों ने पीया है। ऐसा वक़्त आया है जब एक दूसरे की टोह में रहने लगे थे। बातों में दोनों आये हैं और जो दरार आयी थी, उसके ज़िम्मेदार भी हैं। नाचीज़ के दोनों से रिश्ते रहे हैं। वो अगर दोस्ती का गवाह है तो उसने इनमें एक-दूसरे के लिए हसद, जलन और आगे बढ़ें तो नफ़रत भी देखी है, पर वो कभी उस दोस्ती पर हावी नहीं हो पायी, जो बरसों-बरस रही है और मुशायरे की दुनिया में जिसकी मिसाल दी जाती है। उनका यही बड़प्पन है कि हालात जैसे भी रहे, कभी ज़बान को आम नहीं होने दिया... जब भी पूछा गया इंकार किया और ऐसा जवाब दिया जिसने इस तरह की बातों का दम ही निकाल दिया। अब उम्र का वो दौर है जब पुराने याद आने लगते हैं, उन पर प्यार आता है, फ़िक्र होती है। इसी दौर से राहत इंदौरी और मुनव्वर राना भी गुज़र रहे हैं। ऑपरेशन के लिए मुनव्वर राना जब एम्स में भर्ती हुए... वैसे यहाँ वो कई बार भर्ती हुए हैं, लेकिन जब कूल्हे में तकलीफ थी, ऑपरेशन हुआ था, तब शायर मलिकज़ादा जावेद ने सोशल मीडिया

पर मुनव्वर राना के फोटो के साथ पोस्ट डाली और लिखा- "ये मुनव्वर राना हैं, आजकल एम्स नई दिल्ली में अपने कूल्हे की हड्डी के इलाज के लिए एडमिट हैं, एम्स में इनका इलाज बदस्तूर चलता है जिसकी वजह से अक्सर लखनऊ से यहाँ आकर एडमिट हो जाते हैं। इनकी इस बीमारी की वजह घुटनों का ऑपरेशन है, जो ग़ालिबन पहली बार इंदौर के नौसिखिये डॉक्टर से अपने किसी दोस्त के कहने पर करवा लिया था, तब से मुसलसल अजाब में गिरफ्त हैं, मक़बूल शायर हैं और बेहतरीन नस्र निगार हैं। आप इनके हक़ में दुआ कीजिए कि जल्द सेहतयाब होकर लखनऊ पहुँच जाएँ। हालाँकि एक मुद्दत से मेरी इनसे मुलाक़ात नहीं हुई है, मगर इनसे माज़ी में मेरा ताल्लुक़ रहा है इसलिए



एक मुशायरे के दौरान

इनकी परेशानी देखकर और लोगों से सुनकर परेशान हो जाता हूँ।" इस पोस्ट को सतलज राहत ने राहत इंदौरी को दिखाया। नाराज़ हुए, कहने लगे, बेहूदगी है, इस तरह बात नहीं कही जा सकती है, दुआ दे रहे हैं या बद्दुआ कर रहे हैं... लेकिन मुनव्वर सेहतमंद होगा, हम सबके साथ दिखायी देगा।

जिस तरह राहत इंदौरी ने बात कही है, वही मुनव्वर राना भी कहते हैं कि हमें राहत कुछ भी कह सकते हैं, पर कोई दूसरा कहेगा, सुनेंगे नहीं, यही हमारी दोस्ती का मेआर है।

आज भी कोई मुशायरा इन दोनो के बिना कामयाब नहीं है। अगर उसे बुलंदी पर पहुँचाना है या बड़ा मज़मा लगाना है तो राहत-मुनव्वर का नाम ज़रूरी है। हिन्दुस्तान में जो सफ़-ए-अव्वल के शायर हैं, उनमें इनका शुमार होता है और रिश्ता आज का नहीं है।

अगर इन्दौर बिना देखे, सुने मुनव्वर राना को जानने लगा था तो वजह राहत इन्दौरी थे, जो अक्सर महफ़िलों में राना के शेर सुनाते और उसमें अंदाज़ दोस्ताना हुआ करता था। पहले मुनव्वर राना की तारीफ़ करते, फिर शेर पढ़ते, फिर तारीफ़ करते और हालत ये हो गयी थी जैसे ही राहत इन्दौरी मुशायरों से लौटकर आते, उनके आसपास वाले ख़ुद कहने लगे थे... कुछ ताज़ा शेर मुनव्वर राना के सुनाइए! शुरूआत में जो भी सफ़र राना ने इन्दौर के किये, दावत राहत इन्दौरी की ही रही और वो

हमेशा इन्तेज़ामिया से कहते रहे, जब तक मुनव्वर डायस पर नहीं आ जाए, कभी मानना मत वो आ गया है। इससे समझा जा सकता है कि इस दौर के दो क़द्दावर शायरों के बीच कैसा याराना रहा है।

जो राहत इन्दौरी के क़रीब रहे हैं, उन्हें पता है, इस दोस्ती ने कितना सफ़र किया है और कामयाबी के किस टापू पर जाकर आराम कर रही है। हालाँकि पिछला वक़्त दोस्ती के लिए ठीक नहीं रहा। बातें बनी हैं और ख़ूब बनीं, लेकिन दोनों तरफ़ से ऐसी कोई बात नहीं आयी जिसे आगे करके जंग का ऐलान कर दिया जाता। जब भी दोनों से रिश्तों की बात की गयी, दोनों ने 'सलामत रहे दोस्ताना' का ज़िक्र किया है... एक-दूसरे की तारीफ़ की, दोस्ती के क़िस्से सुनाये, पर ज़बान रुकी नहीं और जितने नींबू निचोड़े जा सकते थे, निचोड़े गये। खटाई पैदा की गयी।

राहत इन्दौरी कहते हैं- "इस तरह की बात आखिर किसने फ़ैलायी है कि मेरे और मुनव्वर राना के बीच रिश्ते ठीक नहीं हैं, हम दोस्त हैं, एक-दूसरे की इ़ज्ज़त करते हैं, याराना है, मुझे समझ नहीं आता लोग इस तरह की बातें कैसे कर सकते हैं। इन्दौर के एक अख़बार ने लिख दिया था कि मुनव्वर और राहत के बीच 'शीत-युद्ध' चल रहा है, जिसे पढ़कर लोगों ने मुझे फोन लगा दिए। रेडियो में एक लड़की हुआ करती थी, मधु, वो मेरी और मुनव्वर दोनों की फ़ैन है। उसका मेरे पास फोन आया, उस दिन मेरी सालगिरह थी। उसने पहले मुबारकबाद दी फिर कहने लगी- इन्दौर के अख़बार में छपा है आपके और मुनव्वर राना के बीच 'शीतयुद्ध' चल रहा है। मैंने इनकार किया। मुझे समझ ही नहीं आया 'शीतयुद्ध' क्या है। उस वक़्त मैं लखनऊ में था और सालगिरह का ये तोहफ़ा तकलीफ़देह था, जबकि मेरे और मुनव्वर के बीच रिश्ते हमेशा से अच्छे रहे हैं। उनके वालिद सय्यद अनवर अली राना कहा करते थे- मेरे दो बेटे शायर हैं, एक मुनव्वर और एक राहत... मैं उनको जब भी याद करता हूँ, दिल बैठ जाता है। कमाल के आदमी थे। मोहब्बत से भरे हुए, मेहमान-नवाज़ी ऐसी कि भुलाये नहीं भूलती है। मुझे उनकी मेहमान-नवाज़ी के कई क़िस्से याद हैं। मुनव्वर राना, हबीब हाशमी और रईस अण्डोलवी ने मिलकर 'मुग़ल आर्ट्स' नाम से ब्रज्म बनायी थी, जो मुशायरे कराती थी।

एक मुशायरे में मेरा भी जाना हुआ। चौथी मां़िजल पर हमें ठहराया गया था और मुझे पता चला, चाचा सैय्यद अनवर अली मुझे ढूँढ़ रहे हैं। चौथी मंज़िल तक आ गये थे। मैं कमरे से बाहर आया तो चाचा के साथ तंदरुस्त बकरा खड़ा था, जिसे वो चौथी मंज़िल तक ले आये थे। सलाम-दुआ के बाद मैंने पूछा चाचा इसे लेकर कहाँ घूम रहे हैं। बोले- तुम्हारे लिए लाया हूँ, मुशायरे के बाद इसकी ही बिरयानी खिलाऊँगा... और हमें उसी की बिरयानी मिली भी, जिसमें चाचा की मोहब्बत शामिल थी। उस ज़ायक़े को मैं आज भी नहीं भूला हूँ। जो ख़ूबियाँ उनमें थीं, सारी मुनव्वर राना में मौजूद हैं, कोई भी मुनव्वर को घटिया और कमीना नहीं कह सकता। उनमें दोस्ती निभाने की सिफ़त ज़िंदा है, वो यार है और यारी का मतलब जानता है। मुनव्वर राना कहते रहे हैं- "शायरों की दुनिया मुनाफ़िक़ों की दुनिया है, बावजूद इसके राहत इन्दौरी वो हैं, जिन्हें दोस्त

कहा जा सकता है। मैं भी मुनव्वर के जुमले को आगे बढ़ाते हुए कह सकता हूँ उनमें वो सारी ख़ूबियाँ हैं, जो दोस्त में होना चाहिए।

मेरी मुनव्वर से पहली मुलाक़ात कलकत्ता में हुई, तब वो मुनव्वर अली आतिश हुआ करते थे और चौथे-पाँचवें दर्जे के शायर राज़ इलाहाबादी के शागिर्द थे। मोहम्मद अली लाइब्रेरी के मुशायरे में गया था। एक दिन पहले इलाहाबाद में मुशायरा था। वहाँ मैं ब्लैंकेट भूल आया था। टेलीग्राम करने जा रहा था, वहीं मेरी मुलाक़ात मुनव्वर अली से हुई। वो ख़ुद मेरे पास आये और अपना तअर्रुफ दिया। मुझे याद है, उन्होंने मेरा ऑटोग्राफ भी लिया था और उस पर मैंने शेर लिखा था-

शक्ल-ओ-सूरत से तो जैसे भी हैं 'राहत साहब'
फिर भी जब-जब वो मिले ज़ोहरा-जमालों में मिले

जब मैं टेलीग्राम फ़ार्म भर रहा था तो मैंने ब्लैंकेट की स्पेलिंग ग़लत लिख दी थी, जिसे काटकर मुनव्वर ने दुरुस्त किया और उसके बाद मैं जहाँ-जहाँ भी ग़लती करता हूँ, उसकी वो इस्लाह कर देते हैं और मैं उसे मान लेता हूँ। सारी बातें मैंने उनकी किताब के लिए भी लिखी थीं, लेकिन शायद मेरा मज़मून छप नहीं पाया। इसके बाद मेरी मुनव्वर से मुलाक़ात लखनऊ में हुई। यहाँ शायरों का ठिकाना था- वाली आसी का किताबघर। उसके बग़ल में ही होटल गुलमर्ग थी जहाँ मैं ठहरा करता था। वाली आसी से याद आया... उनके इस किताबघर को 'ग़ीबतकदा' भी कहा जाता था और वाली आसी के कई मशहूर क़िस्से थे। ग़ीबत किये बिना उनका खाना ह़ज्म नहीं होता था। जब जाओ, किसी न किसी की ग़ीबत दस्तरख़्वान पर बिछी रहती थी। एक बार मैं गया तो अचानक ख़ामोशी हो गयी। मैं समझ गया, मैं ही दस्तरख़्वान पर था। मैंने कहा चलने दीजिए, मुझे समझ आ गया आज मेरी बारी है। एक बार का क़िस्सा है, वाली आसी नमाज़ पढ़ रहे थे (वो ग़ीबत कितनी ही करें, पर नमाज़ी पक्के थे) और उनके साथी रोज़ की तरह दस्तरख़्वान पर थे। किसी शायर की ग़ीबत चल रही थी और उस पर किसी ने कुछ कहा। बात अभी पूरी ही नहीं हुई थी कि वाली आसी ने ताबड़तोड़ सलाम फेरा और कहा ऐसा नहीं ऐसा था।

ख़ैर, लखनऊ के कंवीनर हुआ करते थे अतहर नबी। मैंने देखा मुनव्वर उनके मुशायरे में शेर पढ़ रहे हैं और मुनव्वर राना के नाम से पढ़ रहे हैं। मैंने पूछा तो पता चला वाली आसी के शागिर्द हैं। फिर मेरी वाली भाई से बात हुई... उन्होंने बताया मेरे यहाँ किताब ख़रीदने आये थे। पता चला शायरी में दिलचस्पी है। मैंने अतहर नबी से कह दिया और मुनव्वर ने मुशायरा पढ़ लिया। मैं बताता चलूँ, मुनव्वर ने शागिर्दी को पूरी ईमानदारी से निभाया है और कहा जा सकता है कि शागिर्द की वजह से उस्ताद का रुतबा भी बढ़ा है। मुनव्वर ने वाली आसी एकेडमी भी बनायी और काफ़ी काम भी किया। दो बुज़ुर्ग शायरों को दुबई में उन्होंने पचास-पचास हज़ार एकेडमी के तहत दिये।

किसी का शेर है-

जिनके किरदार से आती हो सदाक़त की महक
उनकी तदरीस से पत्थर भी पिघल जाते हैं

मैं चाहता हूँ मेरी और मुनव्वर की दोस्ती को सिर्फ़ दोस्ती के चश्मे से देखा जाए। जो अलग-अलग चश्मे लगाकर हमारी दोस्ती में ताक-झाँक करते हैं, उनको कुछ नहीं मिलना है; वजह, हमारे बीच ज़रा भी फ़ासला नहीं है। जिस ईमानदारी से राहत इंदौरी बात करते हैं, वही बात मुनव्वर राना भी कहते हैं और इंदौर का वो अस्पताल आँखों से गुज़रा है जहाँ मुनव्वर राना के घुटनों का ऑपरेशन था और सूरज निकलते ही राहत इंदौरी अपनी बेगम के साथ ऑपरेशन थिएटर के बाहर बैठे थे। उनकी आँखें नम थीं और कह रहे थे देखते ही देखते मेरा दोस्त ऑपरेशन थिएटर तक पहुँच गया है।

मुनव्वर राना कहते हैं- "राहत पर मैंने बहुत बोला है, लिखा भी है... और जब भी ऐसा किया है, कम ही किया है, क्योंकि वो इससे आगे हैं। हमारी दोस्ती को कुछ भी नाम दे सकते हैं, पर इसमें एक-दूसरे के लिए सिर्फ़ मुहब्बत है। मुझे नहीं पता कोई कैसे इसमें तल्ख़ी ढूँढ़ सकता है, पर ऐसा हुआ। इसमें हमारा, न ही राहत का कोई क़सूर है, बस बातें बना दी गयीं। हमने आधी सदी साथ ग़ुजारी है, वो सब किया है, जो दोस्त करते हैं। राहत हमसे उम्र में बड़े हैं, पर कभी बड़े बने नहीं और दोस्ती के जो तक़ाज़े होते हैं उन्होंने पूरे किये हैं। मुशायरे के डायस से जितने भी दोस्त हमें मिले हैं उनमें राहत आगे हैं। अगर हम ईमानदारी से कहें, जब भी दोस्ती निभाने का मौका आया है वही आगे रहे हैं और हमने हमेशा माना है। उन्होंने भाई का किरदार निभाया है। इंदौर से कभी हमारा बहुत ज़्यादा नाता रहा नहीं है। हालाँकि अब वो दूसरा घर है और जब भी हमें मौक़ा मिला है हमने कहा है अगर रायबरेली की मिट्टी न मिले तो राहत के शहर में ही दफ़न कीजिएगा। इंदौर हमें पसंद है और यहाँ से राहत ही नहीं, दूसरे भी दोस्त मिले हैं... उनकी वजह भी राहत ही रहे हैं। यहाँ तक आने से पहले हमारे शेर यहाँ पहुँच गये थे क्योंकि राहत सुनाते थे। काम आसान नहीं है। कोई शायर किसी दूसरे के शेर सुनाये, वो भी अपने शहर में, कम ही होता है... राहत ने किया है। उनको जब भी हमने किसी मुशायरे में बुलाया है, हमेशा आये हैं। हालाँकि हम कई बार ऐसा नहीं कर पाये बावजूद इसके कभी कोई फ़र्क़ नहीं आया। हम जब हवा में सिगरेट उछाल कर जला लिया करते थे, तब राहत से मुलाक़ात हुई थी। अब सहारे से चलते हैं, उनको भी सहारा लगने लगा है। दवाओं और दुआओं पर हमारी जिंदगी चल रही है, इसलिए जब भी मुलाक़ात होती है आँसुओं का साथ होता है। आधी-सदी सामने आ जाती है और मुझे लगता है उम्र के इस दौर में हमारी दोस्ती और मज़बूत हो गयी है। उनसे ग़ुजारिश है जो हमारी दोस्ती में सुराग़ ढूँढ़ते हैं, ऐसा मत कीजिए, हम दोस्त हैं और यहाँ किसी के यहाँ कोई गुंजाइश नहीं है।"

बात मुनव्वर राना की हो या राहत इंदौरी की इंदौर के अरविंद मंडलोई दोनों के क़रीब रहे हैं और इस दोस्ती को देखा भी है। कहते हैं- "मोहब्बत की नहीं जाती है, हो जाती है और मुनव्वर राना से भी हो गयी। उसके कई दिलचस्प क़िस्से हैं। पर जब आशिक़ी शबाब पर थी, मुशायरे का ख़याल आया और इसी मुहब्बत का हाथ थामे हुए राहत इंदौरी से मिलना हो गया। मुनव्वर राना के शेर जिन्दगी के अच्छे-बुरे वक़्त में मेरे साथ रहे। पहली मुलाक़ात से मैं उनके पैर छूने लगा। चूँकि ज़िन्दगी के सफ़र में कई व़ज्न उठाये पर कमर हमेशा सीधी रही और आज भी है। दुनियादारी की तमाम नौटंकियों के बावजूद मैंने कभी किसी के



अरविंद मंडलोई जी

क़दमों में अपनी ख़्वाहिशों की मंज़िल तलाश नहीं की इसलिए दावे से कह सकता हूँ जिसके भी मैं पैर छूता हूँ उसमें सिर्फ़ हाथ ही नहीं दिल भी झुकता है। जब भी मैं राहत इंदौरी से मिलता हूँ पैर ज़रूर छूता हूँ और उसमें सारा ख़ुलूस शामिल रहता है। बरसों पुरानी मुलाक़ात है जो अलग-अलग अंदाज़ में होती रही है। लेकिन जब मुनव्वर राना की सोहबत में आया तो तस्वीर बदल चुकी थी और मुशायरा डायस के दो दिग्गज शायरों का रिश्ता कैसा रहा है इसका गवाह हूँ। मुनव्वर राना ने मेरे ही कहने पर इंदौर में घुटने का ऑपरेशन तय किया था, जिसकी सज़ा आज तक भुगत रहे हैं और मुझे भी गाहे-बगाहे सुनने को मिल जाती है। ऑपरेशन शुरू होने से पहले राहत इंदौरी अपने दोस्त के साथ डॉक्टर के कमरे में पहुँचे। मुनव्वर राना की ओर मुख़ातिब होते हुए उन्होंने कहा- डॉक्टर बहुत क़ाबिल हैं, मैं अपने दोस्त को इसलिए लाया हूँ, उनका भी दोस्त है, तुम्हारा ऑपरेशन यक़ीनन कामयाब होगा। ऑपरेशन थिएटर में जाते हुए स्ट्रेचर पर लेटे मुनव्वर राना को देखते ही राहत इंदौरी की आँखों से आँसू टपकने लगे थे। ये वो नज़ारा था जो उन सारी बातों को धो रहा था जो अक्सर मेरे कानों तक आ जाती थीं। मुझे अंदाज़ा हुआ कि रिश्तों का जो रुका हुआ पानी है जिसमें अब सड़ांध और बदबू आने लगी थी, कई दिनों से बहा नहीं था। अगर बहता रहता तो शायद ये हालात पैदा नहीं होते। पर राहत इंदौरी ने उस दिन काम कर दिया और

उनके आँसुओं ने सब बयां कर दिया था। मुझे एहसास था कि दोनों की मुहब्बत काम कर चुकी है और रंजिश नाकाम है। कुछ अर्से बाद मुनव्वर राना फिर इंदौर आये। यहाँ की अमरविलास होटल उनका स्थायी बसेरा है। जब शाम को मैं उनके पास पहुँचा तो फ़ितरत के बरख़िलाफ ताज़ादम तैयार होकर मेरा इंतज़ार कर रहे थे। मैं चौंका और पैर छुए। उनकी आँखों की चमक बहुत कुछ कह रही थी और थोड़ी देर बाद उसमें पानी आ गया था, आँसू बहने लगे। उन्होंने मुझे हुक्म के अंदाज़ में कहा- मुझे अभी राहत के घर चलना है; दिन में कोई आया था, कह रहा था, उसकी तबीयत खराब है। कहते उनका गला भरा हुआ था, ज़बान लड़खड़ायी थी। जुमला पूरा हुआ, हुक्म की तामील हुई। कार में मुनव्वर बोले- यार हम लोगों ने ज़िन्दगी फ़िज़ूल ख़र्च की, राहत ने तो बर्बाद की है, ज़िन्दगी से कभी सलीक़े से पेश ही नहीं आया। मैं चुप था क्योंकि दिल से बात निकल रही थी। कहने लगे- अगर अपने जिस्म की हफिाज़त करता तो क्या बात थी। पर वो ऐसा ही है। अब हम राहत इंदौरी के घर पहुँच चुके थे। जहाँ तक मुझे याद है उनकी आँखों का कोई मसला था। हालचाल जानने के बाद राहत इंदौरी की बेगम और दूसरे सब आस-पास थे। लाइब्रेरी में हमने खाना खाया और जब जाने लगे तो मुनव्वर राना ने राहत इंदौरी की बेगम से कहा- तुम्हें इसकी देखभाल करते रहना है। उनके इस जुमले में बहुत कुछ था। रात को जब हम होटल में बात कर रहे थे तो मुनव्वर राना कहने लगे, मैं राहत को समझाऊँगा, उसे मना करूँगा। असल में मैंने भी उसकी हाँ में हाँ बहुत की है, उसे समझाने का काम नहीं किया। लेकिन फिर ख़ुद ही कहने लगे कि उसका लापरवाह रवैया, आवारगी और ज़िन्दगी को ठेंगे पर रखना ही उसे राहत इंदौरी बनाता है।

मैंने सिर्फ़ इतना ही नहीं सुना है, मैं उस छोटे-से लेकिन बुरे वक़्त का गवाह भी हूँ जब उतनी अच्छी बातें होती नहीं थीं जितनी होना चाहिए थीं, पर हम जैसे बहुत थे जो हमेशा चाहते रहे कि जिस दोस्ती पर मुनव्वर राना के वालिद ने नाज़ किया है उसे यूँ ही ख़त्म होते नहीं देख सकते हैं, पर पता भी था इन्हें कोई अलग नहीं कर सकता क्योंकि जब बार-बार कोई किसी की बात करता है तो उसमें सिर्फ़ मुहब्बत ही होती है। मुनव्वर राना के साथ हमने मुशायरे करवाये और मुझे कहना है- सिर्फ राहत इंदौरी ही ऐसे शायर थे, जिन्होंने कभी मोल-भाव नहीं किया। मुझे लगता है उन्होंने मोल-भाव के साथ ज़िन्दगी भी नहीं गुज़ारी है, दोस्ती भी नहीं की है। मैं जब मुनव्वर राना को देखता हूँ तो फिर मेरी नज़र राहत इंदौरी पर जाती है तो समझ आ जाता है कि कुछ रिश्ते आसमान से बनकर आते हैं।"

मुझे हाली नहीं मिला

मैंने कभी ग़ालिब बनने की कोशिश नहीं की

देखा न कोहकन कोई फ़रहाद के बग़ैर
आता नहीं है फ़न कोई उस्ताद के बग़ैर

कभी उस्ताद ढूँढ़े जाते थे, अब उस्ताद बना जाता है। शागिर्द किसका बनना है, इससे ज़्यादा किसे शागिर्द बनाना है इसकी कोशिश होती है। पर राहत इन्दौरी की इसे ख़ूबी कह लीजिए या ख़ामी, उन्होंने कभी ख़ुद को उस्ताद नहीं माना और जब उस्ताद नहीं माना तो किसी को शागिर्द भी नहीं बनाया... इसे खुलकर कहते भी हैं- "मेरा कोई शागिर्द नहीं है।" जबकि वो उस्तादी की हैसियत में हैं, उसके मर्तबे को समझते हैं, हक़ अदा करने की क़ाबिलियत रखते हैं, पर कभी उस्ताद कहलाना पसंद नहीं किया और खुलकर इज़्हार भी करते हैं कि मेरा कोई शागिर्द नहीं है। जो मेरे साथ रहे हैं, उन्होंने मेरी ख़िदमत की है, वो मेरे भाई हो सकते हैं, बेटे की तरह हैं, पर शागिर्द नहीं, मैंने किसी को शागिर्द बनाया ही नहीं और आगे भी बनाने का कोई इरादा नहीं है-

मिस्वाक़ों से चाँद का चेहरा छूता है
बेटा इतनी सस्ती जन्नत नइ होती

इन्दौर में उस्तादों ने ख़ूब शायर पैदा किये हैं। अभी भी फ़ैक्ट्रियाँ चल रही हैं। सिर्फ़ इंदौर में नहीं, मुल्क में हो रहा है। उस्ताद तो अब शायरी का सौदा कर रहे हैं, शेर और ग़ज़ल के हिसाब से पैसे लिए जा रहे हैं, पर जिनकी उस्तादी को सब क़ुबुल करते हैं, वो उस्ताद बनने को तैयार नहीं हैं।

मुझे ख़रीदने वालों क़तार में आओ
वो चीज़ हूँ, जो पसे-इश्तेहार रहती है

क्या कोई आपके पास शार्गिद बनने नहीं आया? राहत इन्दौरी बोले- "अगर मैं बनाता तो सड़क कम पड़ जाती, पर मैंने किसी की परवरिश नहीं की, जब पैदा ही नहीं किया तो परवरिश का सवाल ही नहीं है। किसको शागिर्द बनायें, कोई ऐसा सामने आया ही नहीं। यानी आपको 'हाली' नहीं मिला? यक़ीनन मुझे हाली नहीं मिला, पर मैंने ग़ालिब बनने की भी कोशिश नहीं की और मुझे कोई शिकायत भी नहीं है कि मेरे पास 'हाली' नहीं है। मुझे छोटों से जो प्यार मिला है और मेरे पहले के शायरों ने जो इज़्ज़त दी है वो ख़ास है और ज़िम्मेदार बना देती है।

राहत इंदौरी किसी को शागिर्द न मानें, पर उन्हें उस्ताद मानने वालों की कमी नहीं है और इनमें अहमद निसार भी हैं, जिन्होंने बीस-पच्चीस बरस राहत इंदौरी की अटैची उठायी है और बिना किसी ग़रज़ के सिर्फ मोहब्बत का रिश्ता निभाया है। अहमद निसार कहते हैं- "राहत साहब

मुझे क्या समझते हैं, नहीं पता, पर मैं उन्हें अपना बड़ा भाई, रहबर और उस्ताद मानता हूँ। मैंने उनके साथ बहुत कुछ सीखा है; मेरे पास जो कुछ भी है, सब उन्हीं की सोहबत का नतीजा है। जो वक़्त मैंने राहत साहब के साथ गुज़ारा, मेरी ज़िंदगी का सबसे क़ीमती है और अभी भी कोशिश रहती है कि उन्हीं की सोहबत में ज़्यादा से ज़्यादा वक़्त गुजरे।

ऐसी शहनाई बजाते हैं बनारस वाले

ग़ज़ल कही... आधी फाड़कर ख़ातून को दे दी, आधी ख़ुद ने सुना दी

राहत इन्दौरी फ़नकार हैं और फनकारों की सोहबत में रहना पसंद करते हैं। मौक़ा मिला तो दिलीप कुमार की सोहबत में रहे, मक़बूल फ़िदा हुसैन के साथ वक़्त गुज़ारा और उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ को भी नहीं छोड़ा। सुना भी और सुनाया भी। उनसे निस्बत हो गयी थी और जब उस्ताद का ज़िक्र हुआ तो राहत इन्दौरी की वो आवाज़, जो मुशायरे के डायस पर बरसों से गरज रही है, गीली हो गयी थी, धीमी आने लगी थी और धीमे-धीमे सुनायी दे रहा था कि जब मैं बनारस जाता तो दाल मंडी के मुसाफ़िरख़ाने में ठहरता था। उस ज़माने में शायर मुसाफ़िरख़ानों में ही ठहरा करते थे। बड़ी होटलें तो अब आयी हैं। यही इलाक़ा उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ का भी था, उनसे मुलाक़ात हो जाती थी। उनकी सोहबत में बैठ जाते थे। उस्ताद का इन्तेक़ाल हुआ। उसके तीन दिन बाद बनारस में मुशायरा था। मैं भी पहुँचा और डायस पर ही ग़ज़ल हो गयी, लेकिन उससे पहले किसी ख़ातून ने बनारस पर शेर कहे और जब मैंने शेर कहे तो एक साहब ने अच्छा जुमला छोड़ा- अरे वाह राहत मियाँ! एक ग़ज़ल कही, आधी फाड़कर ख़ातून को दे दी और आधी ख़ुद ने सुना दी। पर ये सब मज़ाक़ था। मैंने जो ग़ज़ल कही, उसमें बाक़ी शेर तो बस ठीक थे, पर जब मैंने ये शेर पढ़ा-

इन्हें कुल्हड़ न दिखाओ तुम्हें मालूम नहीं
कितने घाटों पे नहाते हैं बनारस वाले

आसमाँ झूमने लगता है, ज़मीं नाचती है
ऐसी शहनाई बजाते हैं बनारस वाले

मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे, कान में उस्ताद की शहनाई बज रही थी और वो भोला-सा चेहरा सामने घूम रहा था। आगे पढ़ना मुश्किल था, क्योंकि मेरे लिए बनारस का मतलब ही उस्ताद थे। अब जब मैं बनारस जाता हूँ, बिस्मिल्लाह खाँ दिखने लगते हैं और उनकी शहनाई भी सुन आता हूँ क्योंकि जो उनके क़रीब रहे हैं, उनके लिए शहनाई अभी भी बज रही है। बस एहसास चाहिए और वो उन सबमें मौजूद है, जो शहनाई को समझते हैं, उस्ताद के हुनर से वाक़िफ़ हैं। बहुत सादा तबियत थे, जितने बड़े फ़नकार थे, उतने बड़े इंसान भी। कभी-कभी लगता है कोई इतना बड़ा होकर छोटा कैसे रह लेता है। उनसे मैंने सीखा है, पर अपने अंदर कितना उतार पाया, नहीं पता... कोशिश ज़रूर करता हूं।

किसी दिन चाँद निकला था यहाँ से
उजाले आज तक छत पर खड़े हैं

राहत इंदौरी के साथ सफ़र करने वाले अहमद निसार को भी बनारस याद आ जाता है और वो मुशायरा भी, जिसमें पाकिस्तान से ज़ियाउल्लाह क़ासमी और ज़किया ग़ज़ल आये थे। बहुत सुनने वाले थे, करीब पचास हज़ार होंगे। ज़िया क़ासमी और ज़क़िया ग़ज़ल को खूब दाद मिली। उनके लिए इस तरह की दाद नयी थी, क्योंकि पाकिस्तान में हिन्दुस्तानी दाद नहीं मिलती। दोनों बहुत ख़ुश थे, उन्हें लग रहा था, मुशायरा लूट लिया है, लेकिन अभी राहत इंदौरी बाक़ी थे। आख़िर में जब सर पर सफ़ेद रुमाल बाँधकर राहत इंदौरी ने पढ़ना शुरू किया, उसके बाद जो हुआ बनारस की तारीख़ में दर्ज है। पचास हज़ार लोग 'राहत' महसूस कर रहे थे। वाह-वाह और तालियों से मैदान गूँज उठा था। स्टेज बड़ा था, करीब दो सौ लोग उस पर एक साथ आ सकते थे, लेकिन जैसे ही मुशायरा पूरा हुआ, राहत साहब से मिलने के लिए लोग टूट पड़े, मंच पर चढ़ गये और ऐसे चढ़े की कि मंच ही गिर गया। राहत साहब और मैंने एक-दूसरे को सँभाला। मैंने उनकी चप्पल उठायी और वो बोले-भाग निसार! हम तेजी से दौड़कर कार में बैठ गये, लेकिन तब तक कई जगह से ज़ख्मी हो चुके थे। मेरा एक जूता ग़ायब था, लेकिन राहत साहब की दोनों चप्पल मेरे पास थीं। मैंने राहत इंदौरी के साथ जितने भी मुशायरे पढ़े, उनमें ये ख़ास था।''

राहत इंदौरी के सामने बनारस का वो पोस्टर आ गया, जिसमें ग़लती से नाज़िम अंसारी की जगह राहत अंसारी छप गया था या राहत इंदौरी की जगह नाज़िम इंदौरी। बस उसके अलग-अलग मतलब निकलने लगे। कहते हैं- ''हमारे यहाँ बिरादरी का अपना वजूद है, उसका असर है और जो जहाँ से है वो उनको पसंद करता है। अब इसमें क्या सही है बहस की जा सकती है, लेकिन जब मेरे नाम के आगे बनारस में राहत अंसारी लिख दिया गया तो बहुत कुछ दिलचस्प था। कई बार बनारस गया हूँ, मुझे याद नहीं कितनी बार गया हूँ। वहाँ के बड़े बुनकर व्यापारी जो अपने नाम के आगे अंसारी लगाते हैं उनका फोन आया, कहने लगे सुबह का नाश्ता मेरे साथ करना है। मैंने कहा मैं सिर्फ़ चाय लेता हूँ, मना करने की कोई वजह नहीं थी। सुबह उनकी लम्बी गाड़ी लेने आ गयी। जब मैं पहुँचा तो महल जैसा उनका घर था, उसमें बड़ा कारखाना भी था। अब हम उनके डायनिंग हॉल में थे। चाय-नाश्ता सामने था। बात शुरू हुई तो बोले राहत भाई हमें तो अब पता चला आप अंसारी हैं, बड़ी ख़ुशी हुयी कि हमारी बिरादरी में कोई इतना बड़ा शायर है। मेरे पास कोई जवाब नहीं था।

क़र्फ्यू में मुशायरा

लतीफ़ के बारे में इंडिया टुडे ने लिखा था वो रिवर्स गियर में
साठ की रफ़्तार से गाड़ी भगा लेता है

उत्तर प्रदेश के जितने डॉन हैं, ज़्यादातर मुशायरे के शौक़ीन हैं, सब बड़े-बड़े मुशायरे कराते हैं। इन सबके मुशायरों में राहत इन्दौरी ने शिर्कत की है। सभी उनके फ़न की क़द्र करते हैं। कई डॉन ऐसे हैं जो चुनावी मैदान में उतरे और अपने प्रचार के लिए उन्होंने मुशायरों का सहारा लिया... ख़ासकर उत्तर प्रदेश में ऐसा होता रहा है। राहत इंदौरी के पास ऐसे मुशायरों की फ़हरिस्त है, पर वो उत्तर प्रदेश के बजाय गुजरात पहुँच जाते हैं। अहमदाबाद के डॉन लतीफ़ का ज़िक्र करते हैं। वही है जिस पर शाहरुख़ ख़ान की फिल्म 'रईस' बनी है। हालाँकि उन्होंने देखी नहीं है। राहत इंदौरी कहते हैं- "उत्तर प्रदेश में डॉनगिरी होती रही है और उनकी ज़िंदगी में मुशायरा ख़ास है, पर अहमदाबाद का डॉन लतीफ़ भी शायरी का शौक़ीन था, जिसके बारे में इंडिया टुडे ने लिखा था- 'वो रिवर्स गियर में साठ की स्पीड से गाड़ी भगा लेता है।' अहमदाबाद में उसके क़िस्से आज भी सुनने को मिल जाते हैं, पर मुझे वो मुशायरा आज भी याद है, जो क़र्फ्यू में हुआ था। मैं जब अहमदाबाद रेलवे स्टेशन पर उतरा... सन्नाटा था, कोई दिख नहीं रहा था। मोबाइल उस ज़माने में थे नहीं। मैंने स्टेशन से लतीफ़ को फोन लगाया, जवाब आया, आप पहुँच गये? मैं लेने पहुँचाता हूँ और थोड़ी देर में आठ-दस लोग आ गये। मुझे अभी भी पता नहीं चला, माजरा क्या है। सड़कें सूनी थीं, सन्नाटा था... सिर्फ़ पुलिस दिखाई दे रही थी और समझ आ गया, मैं क़र्फ्यू में घूम रहा हूँ। ख़ैर, लतीफ़ से मुलाक़ात हुई, बोला- "आज मुशायरा नहीं हो पाएगा, कल करते हैं, आप आराम से रहिए, चौबीस घंटे हैं, दो-चार शायरों को और बुला लीजिए।"

मेरी हैरत जगह छोड़ चुकी थी। शहर बंद है, पुलिस का पहरा है और बंदा आसानी से कह रहा है, मुशायरा होगा, साथ ही शायर भी बुला रहा है। मेरे पास लतrफ पर यक़ीन करने के अलावा कोई चारा नहीं था। मुझे पता था, दो दिन पहले ही लाल क़िले का मुशायरा हुआ है, ज़्यादातर शायर दिल्ली में हैं। मैंने फोन लगाया। वाली आसी, मुनव्वर राना, नवाज़ देवबंदी, मंज़र भोपाली के साथ पाँच-छह शायर अहमदाबाद पहुँच गये। क़र्फ्यू जारी था। मैं समझ नहीं पा रहा था मुशायरा होगा कैसे और लोग सुनने कैसे आयेंगे? हालाँकि एक हिस्सा क़र्फ्यू से आज़ाद था, पर दहशत तो थी। शाम हुई, रात हुई, मुशायरा सज गया और हज़ारों लोग सामने बैठे थे। किसी ने मुझसे कहा, ग्यारह बजे तक मुशायरा चलाना है, यहीं तक की 'सरकारी इजाज़त' है। मैं हैरान था कि इतने सारे शायर हैं, ग्यारह बजे तक कैसे पूरा होगा। लतीफ़ ने कहा, आप मुशायरा शुरू कीजिए। मैंने क्या देखा गृहमंत्री चिमनभाई पटेल भी बैठे हुए हैं और

मुशायरा शुरू हुआ तो सुबह तक चलता रहा। जो मुशायरे मेरे ज़हन में रह गये उसमें ये भी शामिल है।

अहमद निसार को कोलकाता का वो मुशायरा याद आ जाता है जिसमें मुनव्वर राना के मेहमान बने थे। वहाँ आसनसोल के कन्वीनर मिल गये, उन्होंने कहा– मुशायरा पढ़ने चलिए। राहत इंदौरी, शबीना अदीब, जौहर कानपुरी, मंज़र भोपाली, नदीम नैयर और मैं... कुछ शायर और होंगे। हम लोग आसनसोल की तरफ़ रवाना हो गये, लेकिन पहुँचने में देर हो गयी। मुशायरा के लिए हंगामा हो रहा था और कन्वीनर नाराज़ था कि इतनी देर से आये कि लोग चिल्ला रहे हैं, जल्दी कीजिए। तभी जौहर कानपुरी ने राहत इंदौरी के कान में फूँक दिया पैसे देने में इसके रिकॉर्ड ख़राब हैं, पहले पैसे ले लीजिए। अब राहत इंदौरी के दिमाग़ में बात रह गयी। कन्वीनर ने फिर इसरार किया तो राहत साहब ने कहा, पहले पैसे दे दो उसके बाद ही पढ़ेंगे। उसने हाथ-पैर जोड़ना शुरू कर दिया, कहने लगा आप पढ़ लीजिए मैं पैसे दूँगा, लेकिन राहत साहब ज़िद पर थे कि पहले पैसे लगेंगे। वो आनाकानी करता रहा और हम लोग अपना बोरिया बिस्तर उठाकर स्टेशन की तऱफ बढ़ गये। रिक्शा में बैठे ही थे कि देखा पच्चीस-तीस लोग हाथों में लट्ठ लिये चले आ रहे हैं। उन्होंने हमें घेर लिया। सब सहम गये और राहत इंदौरी को आगे कर दिया। वो कहाँ डरने वाले थे। उन्होंने कहा मैं तुम सबको पाँच मिनट में बंद करा दूँगा, एक तो बंदा हमें पैसे नहीं देता है और आप पढ़ने को कह रहे हैं। लट्ठ वालों की भीड़ में कन्वीनर भी था। जिसने फिर हाथ-पैर जोड़ना शुरू कर दिये, अपने शहर का वास्ता देने लगा। काफी मशक़्क़त के बाद तय हुआ कि एक-एक शायर पढ़कर आते जाएगा और उसको आप पैसे देते जाएँगे। जो निज़ामत कर रहा था, उससे राहत साहब ने कह दिया कि मुझे, मंज़र और निसार को पहले पढ़ा देना, हम तीनों ने अपना पैसा लिया और चलते बने। बाद में पता चला उसने तीन-चार शायरों को पैसे नहीं दिये।

इंदौर का वो मुशायरा भी कैसे नज़रअंदाज़ किया जा सकता है, जिसे इंडो-पाक नाम दिया गया था और पाकिस्तान से क़तील शिफ़ाई आये थे। बेहद कामयाब मुशायरा था। वही डायस था, जहाँ मुनव्वर राना का शेर मक़बूल हुआ था-

बदन में दौड़ता सारा लहू ईमान वाला है
मगर ज़ालिम समझता है कि पाकिस्तान वाला है

क़तील शिफ़ाई थे तो हिन्दुस्तान में ही और उन दिनों वो फ़िल्मों में गाने भी लिख रहे थे। उनके पास सिर्फ मुम्बई का वीज़ा था, लेकिन राहत इंदौरी उन्हें इंदौर ले आये। आख़िर मुशायरा बनाना था और अपने शहर के सामने पाकिस्तानी शायर खड़ा करना था। वो आ गये, मुशायरा हो गया, कामयाब भी रहा... पर ख़बर हो गयी। क़तील को कैसे लाया गया है। जिस होटल में वो ठहरे थे, पुलिस ने उसे घेर लिया। राहत इंदौरी

के लिए मुश्किलें थीं उस वक़्त इंदौर कलेक्टर मनोज श्रीवास्तव हुआ करते थे, जो साहित्य, अदब, कविता, शायरी के क़रीब थे। उन्होंन्ो बात को समझा और राहत इंदौरी से कहा मुम्बई से लिखवाकर लाना पड़ेगा, उसके बिना कुछ होगा नहीं और मुम्बई की तरफ़ जो पहला जहाज़ जा रहा था, उसी में राहत इंदौरी रवाना हुए और वहाँ से काग़ज़ पूरे करके लाये। इसमें दो दिन ख़र्च हुए और क़तील शिफ़ाई को होटल में ही वक़्त गुज़ारना पड़ा। लेकिन वहाँ भी महफ़िल जम गयी थी और कलेक्टर ने उन्हें वहीं बैठकर सुना भी था। तब सब कुछ आसान था, रिश्तों में इतनी कड़वाहट नहीं थी और शायरों को सिर्फ़ शायर ही समझा जाता था। मीडिया ने इस ख़बर को हज़्म किया और सिर्फ़ अदब को ऊपर रखा। लेकिन राहत इंदौरी ने बिगड़ी बात को सँभाल लिया। जब उस मुशायरे का ज़िक्र होता है तो वो मुस्कुरा देते हैं, पर वही मुशायरा है जो इंदौर के अदबी हलक़ों में आज भी याद किया जाता है।

परिन्दे अपनी बोलियाँ बोलकर उड़ जायेंगे

मुझे यक़ीन है फिर कोई वसीम बरेलवी
मुनव्वर राना और राहत इन्दौरी आयेंगे



राहत इंदौरी, वसीम बरेलवी, मुनव्वर राना

मुशायरों में जब वसीम बरेलवी, मुनव्वर राना और राहत इन्दौरी दिखायी देते हैं तो आँखों में चमक आ जाती है कि अभी डायस का वक़ार ज़िन्दा है। वो शायर मौजूद हैं जो मुशायरे की रिवायत सींच रहे हैं। लेकिन जैसे ही ज़हन आगे देखने लगता है, मायूसी आ जाती है, अँधेरा छाने लगता है, सवाल दौड़ने लगते हैं कि इनके बाद मुशायरे का क्या होगा। सवाल वाजिब भी है, क्योंकि दूसरी क़तार उम्मीद जगाती दिखायी नहीं दे रही है, जिनमें मुनव्वर राना, राहत इन्दौरी और वसीम बरेलवी ढूँढ़े जाएँ। हालाँकि अदब का कारवाँ मीर और ग़ालिब के बाद भी क़ायम है। फ़ैज़, इक़बाल और फ़िराक़ के बाद भी शमा रोशन रही है। तो सोचा जा सकता है कि इनके बाद भी आवाज़ आती रहेगी, पर सब इतना आसान नहीं है। वजह... ऐसा कोई पूत पालने में नहीं है, जिस पर बाज़ी लगायी जा सके।

अब शोहरत और दौलत कमाने के छोटे रास्ते इख़्तियार किये जा रहे हैं। वो ज़ज्बा नहीं दिखता जो वसीम बरेलवी, मुनव्वर राना और राहत इन्दौरी में दिखायी देता है। इसके बाद बेचैनी लाज़मी है और राहत इन्दौरी यहीं से अपनी बात रखते हैं- मुशायरे की फ़हरिस्त बनाइए, पाँच-सात नाम के बाद क़लम रुक जाती है, समझ नहीं आता किसको बुलाया जाए, पर उम्मीद तो रखना होगी। सब बरसों से हो रहा है। जब इक़बाल गये, फ़िराक़ गये तब भी सवाल था और जब ख़ुमार, जोश, जिगर, कृष्णबिहारी, जाँनिसार अख़्तर रवाना हुए तब भी सवाल मौजूद था... आगे क्या? सिलसिला चल रहा है, लेकिन बार-बार पूछा जाता है,

आपके बाद कौन? इस सवाल से बड़ा भी बना दिया जाता है और बूढ़ा भी। हम बड़े शायर कब से हो गये? जब मुझे कोई बड़ा कहता है, मैं ठहर जाता हूँ, सोचता हूँ क्या मैं बड़ा हो गया हूँ। इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि ऐसा नहीं है, अभी इंतज़ार है और मैं मानता हूँ, हम इसलिए बड़े दिख रहे हैं, क्योंकि जो बड़े थे, वो जा चुके हैं, उनकी ग़ैर मौजूदगी ने हमारा क़द बड़ा कर दिया गया है। मुझे यक़ीन है फिर कोई वसीम बरेलवी, मुनव्वर राना आयेंगे। बहादुर शाह ज़फ़र का शेर है-

ये चमन यूँ ही रहेगा और हज़ारों बुलबुलें
अपनी-अपनी बोलियाँ सब बोलकर उड़ जाएगीं

हमारा क्या रुतबा है... वो तो रुतबे वाले नहीं हैं, इसलिए हमें रुतबा मिल गया है। हाँ, हमने जो कुछ भी किया, जैसा भी किया, उसे अगर उर्दू अदब ख़िदमत में शुमार कर ले तो मेहनत ठिकाने लगे। मुझे लगता है आने वाली नस्ल में भी शायरी बाक़ी है और जो स्टेज बरसों से अदब की ख़िदमत कर रहा है, वहाँ शमाँ जलती रहेगी। आना-जाना लगा रहता है। मुझे अपने बाद आये हुए शायरों से उम्मीद है। कुछ ऐसे हैं जिन्हें मैं सुनता हूँ तो एहसास होता है कि विरासत सँभालने वाली आवाज़ मौजूद है। ख़ुशबीर सिंह 'शाद', तनवीर ग़ाज़ी, शकील आज़मी, शकील जमाली के साथ मुश्ताक़ अहमद मुश्ताक़ की तारीफ़ की जा सकती है। मैं इनमें मुस्तक़बिल तलाश कर सकता हूँ। इनके अलावा और भी आवाज़ हैं, ख़याल हैं जो मायूस नहीं होने देते।

क़लंदर इन्कार भी कर सकता है

मुशायरों में जो मोहब्बत मिली है, वो हर ईनाम से बढ़कर है



अपने तेवर में शेर सुनाते हुए

तनक़ीद करने वाले कभी राहत इन्दौरी की शोहरत ह़ज्म नहीं कर पाये और उन्हें मुशायरे का शायर ही बताते रहे। लेकिन अदब नवाज़ और शायर में जो भी होना चाहिए वो सब राहत इन्दौरी में मौजूद है। उनके पास अपना काम है, जो इनआम चाहता है... लेकिन सरकार की नज़र कभी पड़ी नहीं और न ही राहत इन्दौरी ने ऐसा कुछ किया जिससे नजर आसान हो जाए। उनके क़लंदर ने कभी इजाज़त ही नहीं दी, इसलिए बस काम करते रहे, लिखते-पढ़ते रहे; कभी उस इनआम की तरफ देखा ही नहीं जो शायरों की शेरवानी में टाँके जाते रहे हैं। माना जाता रहा है कि बिना अवार्ड के फ़नकार मुकम्मल नहीं होता, लेकिन राहत इन्दौरी ऐसा नहीं मानते... इस पर उनका रुख़ साफ़ है-

इक हुकूमत है जो इनआम भी दे सकती है
इक क़लंदर है जो इंकार भी कर सकता है

मुनव्वर राना का शेर भी यहाँ इस्तेमाल किया जा सकता है-

मैं हर एज़ाज़ को अपने हुनर से कम समझता हूँ
हुकूमत भीख देने को भी भरपाई समझती है

मुज़फ्फ़र हनफ़ी कहते हैं-

लोग तो नाम कमाने में लगे रहते हैं
आदमी काम से ज़िन्दा हो तो मरता है कभी

राहत इन्दौरी के हिस्से भी कोई बड़ा अवार्ड नहीं आया है, पर इसका उन्हें मलाल नहीं है; वो लोगों की मोहब्बत को सबसे बड़ा अवार्ड मानते हैं, कहते हैं- अवार्ड ने मेरी तरफ़ कई बार देखा, पर मैं ही उस तरफ़ नहीं देख पाया। मैंने असल में वो खेल सीखा ही नहीं, जिससे अवार्ड मिलते हैं और वो पैंतरेबाज़ी मुझे आती भी नहीं है। इसका मतलब है सारे अवार्ड इसी तरह मिलते हैं, ऐसा नहीं है... यक़ीनन हक़दार को भी हक़ मिला है। मुझे अवार्ड में कोई दिलचस्पी नहीं है और मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ मुझे कोई अवार्ड नहीं मिला है... मुशायरों में जो मुहब्बतें मिली हैं, हर अवार्ड से बढ़कर हैं, उन मोहब्बतों से मेरी हर सेल्फ़ लबरेज़ है; कभी उसकी तरफ़ देखकर मुझे किसी अवार्ड की याद नहीं आयी है।

मैंने मुल्क़ों की तरह लोगों के दिल जीते हैं
ये हुकूमत किसी तलवार की मोहताज नहीं

अटल बिहारी वाजपेयी जब प्रधानमंत्री थे, तब चाहने वालों ने कोशिश की थी कि मुझे कोई 'पद्म' मिल जाए। उन्होंने मुझसे कहा आप दस-बीस अंजुमनों से लिखवाकर कह दीजिए, बाक़ी काम हमारा है। पर मैं शायर हूँ, यही बस मुझे आता नहीं है और अगर मैं कर लेता तो अपने आगे कोई-सा 'पद्म' ज़रूर लगवा लेता। अभी भी कई हैं जो मुझे अवॉर्ड हासिल करने के नुस्ख़े बताते रहते हैं और उनके पास शर्तिया इलाज भी है; पर मैंने कभी उनको सु ना ही नहीं। जब बिना काम करने वालों को तरह-तरह के अवॉर्ड से नवाज़ा जा रहा है तो इससे काम करने वाले बैचेन रहेंगे ही। बात सिर्फ अवार्ड की नहीं है, नाम और शोहरत के लिए उनसे कभी कुछ हुआ ही नहीं... यहाँ तक कि किताबों में ख़ुद को दर्ज करने में भी लापरवाह रहे हैं। फिर उनका शेर भी है-

जहालतों के अंधेरे मिटा के लौट आया
मैं आज सारी किताबें जला के लौट आया

मेरी ज़्यादा किताबें आ गयीं; इतनी नहीं आना चाहिए; एक-दो किताबें बहुत थीं। मैं नहीं चाहता ज़्यादा किताबें हों। एक-दो किताबें हों और ऐसी हों कि उन पर दस-बीस साल बात हो... ये क्या कि एक किताब आयी और दूसरी आ गयी। जो भी मेरी किताबें आयी हैं, ख़ूब पढ़ी गयी हैं। अभी जो 'मौजूद' आयी है, उसे हाथों-हाथ लिया जा रहा है। हालाँकि दीपक रूहानी ने उनकी जिंदगी को काग़ज़ पर उतारा है और 'राहत साहब' इसे नाम दिया गया है जिसे हाथों हाथ लिया जा रहा है। पहली बार राहत इंदौरी के लिए ऐसी कोशिश हुई है जो कामयाब है। वैसे ये सब पहले भी हो सकता था, पर राहत इंदौरी ने इस तरफ़ कभी देखा ही नहीं। राहत इंदौरी की शायरी में तेवर है तो ज़िंदगी में सादगी है और वो नेकी करके दरिया में बहाने पर यक़ीन रखते हैं। उन्हें बाज़ार का कोई फ़ार्मूला नहीं आता। ख़ुद्दारी को राहत इंदौरी ने ख़ूब खाद-पानी दिया है। हसन नईम का शेर है-

गर्द-ए-शोहरत को भी दामन से लिपटने न दिया
कोई एहसान ज़माने का उठाया ही नहीं

राहत इंदौरी शायरी बेचने के तौर-तरीक़ों से वाक़फि नहीं हैं और न ही कभी उन्होंने इसे सीखने की कोशिश की... जबकि अदब में इसकी ख़ूब ख़रीद-फ़रोख़्त होती है। जिस आसानी से वो सत्ता, राजा और ताक़त के सामने बोलते हैं, अपनी बात रखते हैं, तंज़ करते हैं, उससे पता चलता है कहने में चूकते नहीं हैं, न ही कभी किसी दरबार की ज़ीनत बनने की कोशिश करते देखे गये, ऐसा नहीं है उनको मौक़ा नहीं मिला। उनके शेर बोलते हैं-

सोने का रथ फ़क़ीर के घर तक न आएगा
कुछ माँगना है हमसे तो पैदल उतर के आ

ऐ चराग़ों तुम्हें जलना है सहर होने तक
कहीं मुँहज़ोर हवाओं से चमक मत जाना

मेरा ज़मीर मेरा एतबार बोलता है
मेरी ज़ुबान से परवरदिगार बोलता है

तेरी ज़ुबान कतरना बहुत ज़रूरी है
तुझे मरज़ है कि तू बार-बार बोलता है

कुछ और काम तो जैसे उसे आता ही नहीं
मगर वो झूठ बहुत शानदार बोलता है

दो गज़ ज़मीन भी न मिली

मक़बूल साहब का तख़ल्लुस 'हया' था



राहत साहब, एम.एफ.हुसैन साहब और ताजमहल

राहत इन्दौरी के शहर से मक़बूल फ़िदा हुसैन का गहरा रिश्ता रहा है और लम्बा वक़्त उन्होंने इन्दौर में ग़ुज़ारा है। लेकिन राहत इन्दौरी की उनसे मुलाक़ात बहुत देर से हुई और जब हुई तो फिर आख़िरी दम तक मिलना-जुलना लगा रहा। इस रिश्ते को क्या नाम दिया जाए समझ नहीं आता। दोस्ती कहा नहीं जा सकती; साथी थे और एक-दूसरे के फ़न की क़द्र करते थे। राहत इन्दौरी की ज़िन्दगी में पेंटिंग को ख़ास मुक़ाम हासिल है और मक़बूल फ़िदा हुसैन तो पूरी दुनिया में इसी वजह से मक़बूल हैं। जब मक़बूल फ़िदा हुसैन पिचहत्तर के हुए, तब कहीं जाकर पहली बार राहत इन्दौरी की उनसे मुलाक़ात हुई... लेकिन पहले से वो हुसैन के क़ायल थे और जब हुसैन उनके घर ही आ गये तो फिर इस मौक़े को राहत इन्दौरी कैसे छोड़ सकते थे।

इन्दौर ने हुसैन साहब का जश्न रखा था। वो पिचहत्तर बरस के हो गये थे। दो-तीन दिन की महफ़िल थी, करने वाले शाहिद मिर्ज़ा और आदिल क़ुरैशी थे, जो राहत इन्दौरी के छोटे भाई थे। तब सब साथ थे... राहत इन्दौरी भी श्रीनगर (इंदौर) में ही रहते थे। आदिल क़ुरैशी ने हुसैन साहब को घर बुला लिया था। राहत इन्दौरी वहीं मिले। ताअर्रुफ़ हुआ और सिलसिला शुरू हो गया। यहीं पर राहत इन्दौरी ने उनसे अपनी किताब का कवर पेज बनाने की बात कही थी, जिसका ज़िक्र आदिल क़ुरैशी ने किया भी है। राहत इन्दौरी कहते हैं- इस मुलाक़ात के बाद मुलाक़ातें होती रहीं, क्योंकि हुसैन तो शायरी व्◌ाâ◌े दीवाने थे, अँग्रेज़ी में शेर कहते थे और 'हया' उनका तख़ल्लुस था। मुशायरों में उनसे

अकसर मुलाक़ात होती थी और जो भी हिन्दुस्तान के बड़े मुशायरे थे, उसमें वो शिर्कत करते थे; दुबई के मुशायरों में भी उनसे मुलाक़ात हुई। मैं मुम्बई पहुँच गया था। विधु विनोद चोपड़ा के लिए गाने लिख रहा था और उन्हीं के दफ़्तर में हुसैन साहब का फोन आया, राहत इन्दौरी को मुझ तक पहुँचा दीजिए। फिर मुम्बई में भी मुलाक़ात होने लगी। वो 'गजगामिनी' बना रहे थे और उसके पूरी दुनिया में ऑपेरा की तरह शो करना चाहते थे। लिखने का काम मुझे मिला था और हमने काम शुरू भी कर दिया था। मुकम्मल भी हो गया था; हुसैन को पसंद भी आया था, क्योंकि ये सबका ड्रीम प्रोजेक्ट था। लेकिन कलाकारों का वक़्त नहीं मिल पा रहा था। शबाना आज़मी,



राहत साहब की बनाई हुई पेंटिंग

शाहरुख़ ख़ान और जो दूसरे थे, वक़्त दे नहीं पा रहे थे, इसकी वजह से 'गजगामिनी'का ऑपेरा मुकम्मल नहीं हो पाया, लेकिन उसके ज़रिये हुसैन से बहुत क़रीब हो गये। उसके बाद उनकी फ़िल्म 'मीनाक्षी' के लिए भी काम किया और उनसे मुलाक़ात का सिलसिला भी लाजवाब रहा है। मैंने और मक़बूल फ़िदा हुसैन ने कई फ़िल्में देखी हैं। इंदौर के रीगल सिनेमा में हमने 'लगान' देखी थी। जयप्रकाश चौकसे से टिकट का इन्तेज़ाम कराया था और हमारे लिए आगे की जगह तय कर दी गयी थी। वो यादगार लम्हे थे। चूँकि हुसैन साहब को फ़िल्म देखना था इसलिए तय किया गया अँधेरा होने पर ही थिएटर में दाख़िल होंगे और रोशनी होने से पहले वापस आ जाएँगे। पर ऐसा हो न सका। लोगों ने हुसैन को पहचान लिया। भीड़ लग गयी। फिर वो अलग भी दिखते थे। ये उन दिनों की बात है जब वो 'मीनाक्षी' कर रहे थे और वो चाहते थे कि मैं उनके साथ काम करूँ, लेकिन मुशायराबाजी की वजह से वक़्त नहीं मिल पा रहा था तो उन्होंने नया यह किया कि ख़ुद इंदौर आ गये और हमने काफ़ी वक़्त साथ गुज़ारा। अब वो नहीं हैं पर मेरा शेर है -

जनाज़े पर मेरे लिख देना यारो

मुहब्बत करने वाला जा रहा है

जिस बदनसीबी में उन्होंने आख़िरी वक़्त गुज़ारा, वो उसके हक़दार नहीं थे। सियासत ने जकड़ लिया; उस फ़नकार को घर की ज़मीन तक नहीं मिली, जिसका अफ़सोस रहेगा। क्या मुल्क को पहचान देने वालों के साथ ऐसा किया जा सकता है! बहादुर शाह ज़फ़र का शेर है-

कितना है बदनसीब 'ज़फ़र' दफ़्न के लिए
दो गज़ ज़मीन भी न मिली कू-ए-यार में

उनके साथ रहने से पता चलता था, कलाकार क्या होता है। उन्होंने कभी ये ज़ाहिर नहीं होने दिया कि दुनिया भर में उनके स्ट्रोक का कमाल है। उनके जाने से कुछ दिन पहले ही मैं उनसे दुबई में मिला था। वो ख़ासतौर पर मुझसे मिलने लंदन से दुबई आये थे। वो नया कुछ करना चाहते थे और उन्होंने कहा था– "हम फिर मिलेंगे, क्योंकि अभी बहुत काम बाक़ी है। मैं उनके साथ केरल भी गया था, तीन दिन और चार रातें गुज़ारी थीं। वहाँ उन्होंने बहुत काम किया था।

फ़ैज़ का क्रांतिकारी चेहरा, जोश-जिगर की मासूमियत और ग़ालिब का दर्द



राहत साहब के शेरी मजमुए ‘कलाम’ का कवर

शायरी को जितना मज़ा सुनने में है, उतनी ही ल़ज्ज़त पढ़ने में है। कभी-कभी तो पढ़ना, सुनने से बेहतर हो जाता है, क्योंकि किताब, पढ़ने वालों का मेआर तय नहीं करती, जबकि सुनने में ऐसा होता है। तभी तो शक्ल देखकर शायरी सुनायी जाती है और जहाँ-जहाँ भी सुनायी जा रही है वहाँ वो सुनने को नहीं मिलती जो किताबों में मौजूद है। पर कुछ शायर ऐसे हैं जो स्टेज और किताब में एक-सी शायरी करते हैं। राहत इन्दौरी अगर मुशायरे में कामयाब हैं तो वजह उनकी शायरी है... लेकिन उनके वहाँ भी किताब में दर्ज शायरी कुछ और कहती है। कहा जा सकता है राहत इन्दौरी सिर्फ़ सुनने की चीज़ नहीं हैं, पढ़ने की भी हैं। जिसने उनकी ‘धूप-धूप', ‘पाँचवाँ दरवेश', ‘नाराज़', ‘रुत', ‘मेरे बाद' और ‘मौजूद' जैसी किताबें नहीं पढ़ी हैं, वो ‘कलाम' से काम चला सकते हैं। इसमें पुरानी किताबों का अक्स है और नया भी बहुत कुछ है। वैसे, राहत इन्दौरी की शायरी को किसी एक किताब के हवाले नहीं किया जा सकता, फिर भी ‘कलाम' से उन्हें समझने में आसानी हो सकती है, क्योंकि उनकी शायरी का हर रंग इसमें मौजूद है। फ़ैज़ का क्रान्तिकारी चेहरा भी ढूँढ़ा जा सकता है, जोश-जिगर की मासूमियत और ग़ालिब का दर्द भी।

‘कलाम' में पुरानी किताबों के मुक़ाबले ज़्यादा पन्ने हैं, ग़ज़लें ख़ूब हैं। आमतौर पर किताबों में सौ-डेढ़ सौ ग़ज़लें होती हैं, पर इसमें दस कम ढाई सौ हैं और कहीं से भी खोल लीजिए, कुछ न कुछ मिल ही जाता है। सीधे शायरी शुरू होती है। न तो शायर अपने बारे में कुछ लिख रहा है, न ही उसकी डिग्रियाँ और इनामात दिखायी देते हैं, जबकि दूसरी किताबें इनके बग़ैर पूरी नहीं होतीं। वैसे भी राहत इन्दौरी लिखने के मामले में

कंजूस हैं। कोई भी किताब उठाकर देख लीजिए, ख़ुद पर उनकी क़लम चलती नहीं है और दूसरों की क़लम को भी वो फ़ैलाकर जगह नहीं देते।

'कलाम' में दिलीप कुमार का कलाम है। वैसे, 'लम्हे-लम्हे' में भी मज़मून छप चुका है। कम लफ़्ज़ों में किस तरह बात की जा सकती है, दिलीप कुमार से सीखा जा सकता है। उन्होंने इक़बाल के शेर से बात शुरू की है-

जहाँ में एहले इमाँ सूरते-ख़ुर्शीद जीते हैं
इधर डूबे, उधर निकले, उधर डूबे, इधर निकले

अच्छे शेर की ख़ूबी है, वो याद हो जाता है और ज़ेहन में क़ैद रहता है। राहत इन्दौरी का शेर भी उन्होंने क़लम किया है-

बरछी लेकर चाँद निकलने वाला है
घर चलिए अब सूरज ढलने वाला है

राहत इन्दौरी का 'कलाम' पढ़ने के बाद लगता है, उन्होंने कभी कहने में समझौता नहीं किया और बड़ी से बड़ी बात पूरी जुर्रतमंदी के साथ कही, फिर चाहे उसका अंजाम कुछ भी हो-

मश्विरा है कि उठो, नहर पे क़ब्ज़ा कर लो
भीख माँगोगे तो क़तरा भी नहीं मिल सकता

बहुत ग़ुरूर है दरिया को अपने होने पर
जो मेरी प्यास से उलझे तो धज्जियाँ उड़ जाएँ

किताब के आख़िरी पन्ने पर उनका शेर है-

इंसाफ़ ज़ालिमों की हिमायत में जाएगा
ये हाल है तो कौन अदालत में जाएगा

उनकी शायरी में सिर्फ ग़ुस्सा या जज़्बात ही नहीं मिलते, दर्द भी दिखायी देता है... हालाँकि उसे वो आम नहीं होने देते बल्कि पालते हैं। पर दर्द की ख़ूबी है, वो रस्सी तुड़ा ही लेता है। कहीं राहत इन्दौरी कहते हैं-

अब फिरते हैं हम रिश्तों के रंग-बिरंगे ज़ख़्म लिए
सबसे हँसकर मिलना-जुलना बहुत बड़ी बीमारी है

तीन सौ पेज की किताब है और तीन सौ रुपए क़ीमत रखी गयी है, पर उसमें जो है, उससे तीन सौ रुपए कम लगते हैं, क्योंकि इसमें वो ग़ज़ल भी हैं जो स्टेज पर सुनने को अभी तक तो नहीं मिली हैं। हाँ, राहत इन्दौरी की ग़ज़ल की क्या क़ीमत हो सकती है यक़ीनन उनकी कामयाबी में स्टेज की बड़ी हिस्सेदारी है। जो लहजा उन्होंने अख़्तियार

किया है, उसने उन्हें रफ़्तार दी है, पर लहजे के साथ उनके पास शायरी रही है। फिर शायरी को तरन्नुम की क़ैद से उन्होंने ही आज़ादी दिलायी और उस समय तहत में पढ़ना शुरू किया जब गला छाया हुआ था। बड़े से बड़े मज़मून को उन्होंने लफ्ज़ों में क़ैद कर दिया है। 'कलाम' इसका गवाह है। इसमें जो शायरी है, वो उन्हें बड़ी आसानी से दुनिया के बड़े शायरों के साथ खड़ा कर देती है। शायरी के जो भी फ़न हैं सब दिखायी देते हैं और राहत इन्दौरी ने नया फ़न ईजाद किया है। वहाँ-वहाँ से शेर कह डाले जो आसान नहीं थे। किताब शुरू होते ही शेर दिखायी देता है-

हम ऐसे फूल कहाँ रोज़-रोज़ खिलते हैं
सियह गुलाब बड़ी मुश्किलों से मिलते हैं

सही भी है, जो राहत इन्दौरी के पास है, वो आसानी से मिलता नहीं है। 'कलाम' जहाँ उनकी शायरी से रूबरू कराता है, वहीं कुछ सवाल भी छोड़ देता है और बताता है कि स्टेज का कितना ही कामयाब शायर हो, उसे समझने के लिए किताब की ज़रूरत रहती है, क्योंकि स्टेज पर अदाकारी तो देखी जा सकती है, पर फ़नकारी के लिए किताब है और यही तो 'कलाम' है।

दिलीप कुमार के सिरहाने 'राहत'

दिलीप साहब ने मेरी तरफ़ देखा और
बोले- जैसा मुद्दई वैसा गवाह



पाँचवाँ दरवेश पढ़ते हुए दिलीप कुमार

दिलीप कुमार का शायरी से गहरा रिश्ता रहा है। कई शायर उनके दोस्त रहे हैं। जो दिलीप कुमार के करीब हैं, उन्हें उनकी शायरी से मोहब्बत पता है। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ से उनका दोस्ताना था, फिराक़ गोरख़पुरी उनके क़रीब थे और ऐसे मुशायरे भी हैं, जिसमें दिलीप कुमार ने शिर्कत की, ख़िताब किया और जब इस सिलसिले के पन्ने पलटाये जाते हैं तो राहत इन्दौरी का ज़िक्र निकल आता है। दिलीप कुमार के वो साढ़े आठ मिनट सामने आ जाते हैं, जो उन्होंने राहत इन्दौरी की तारीफ़ में कहे थे। अपनी किताब पर कुछ लिखवाने के लिए राहत इन्दौरी जब दिलीप कुमार के घर पहुँचे तो मुलाक़ात हुई। किताब पर कुछ लिखने का ज़िक्र चला तो ट्रेजेडी किंग ने पूछा- किताब साथ है? राहत इन्दौरी ने झिझकते हुए इनकार किया। दिलीप साहब बोले- मुझे अपने कमरे तक जाना होगा, वहाँ बिस्तर के सिरहाने तुम्हारी किताब रखी है। उसके बाद दिलीप कुमार उस किताब को लाये और तभी मज़मून मुकम्मल हुआ। उसमें लिखा- "एहसास को शायरी में कैसे तब्दील किया जाता है, राहत इन्दौरी से सीखा जा सकता है।"

राहत इन्दौरी कहते हैं- "मैं शुरू से उनका दीवाना रहा हूँ और जब फिल्मी पोस्टर बनाता था, तब दिलीप कुमार का पोस्टर बनाने में अलग ही मज़ा आता था। उनसे मेरी पहली मुलाक़ात मुशायरे में हुई। मुझे याद है मुम्बई में उर्दू टाइम्स की सिल्वर जुबली थी, उसमें दिलीप कुमार आये थे। उसके बाद हैदराबाद के मुशायरे में मुलाक़ात हुई। वो हैदराबाद का ज़िक्र करते हैं तो नूर इंदौरी याद आ जाते है, जो सुनाया करते थे वहाँ के मुशायरे में दिलीप साहब मेहमान-ए-ख़ुसूसी थे। जैसे ही हमने उन्हें देखा, मैंने राहत इंदौरी से कहा चलो मिल लेते हैं। मिलना तो उनको भी था,

लेकिन बोले, नूर साहब ऐसा करते हैं, पहले पढ़ लेते हैं, खूब अच्छा पढ़ेंगे, फिर मिलने का मज़ा ही कुछ और आयेगा। मुझे मशवरा पसन्द आया। जैसे ही मैंने पढ़ा, चारों तरफ दाद थी और उसके बाद राहत इंदौरी ने कमाल ही कर दिया। मुशायरा उड़ रहा था, धुआँ-धुआँ हो गया था। अब हमारे मिलने की बारी थी। दिलीप साहब के आस-पास बैठ गये। मैं पहले से बैठ गया था। मेरे पास आकर राहत भी बैठ गये। दोनों ख़ामोश बैठे थे। दिलीप साहब का हम पर कोई ध्यान नहीं था। थोड़ी देर बाद उन्होंने राहत की तरफ़ देखा और बोले, कहिए मियाँ...!

अब राहत का चेहरा देखते ही बनता था। लेकिन फ़ौरन राहत ने कहा, फोटो की तलब है। मैंने और राहत ने दिलीप साहब के साथ फोटो खिंचवाया और उन्होंने राहत के कंधे पर हाथ रखते हुए फोटोग्राफर से कहा, ख़ूबसूरत आना चाहिए। फिर हम वापस उनके पास बैठ गये। कुछ देर बाद दिलीप साहब ने फिर पलटकर देखा और राहत के कान में कहा फोटो हो गये न..! अब हमें उठना था, हम समझ चुके थे, वो क्या चाह रहे हैं और हमारा इतना सब करना फोटो से ज़्यादा आगे बढ़ नहीं पाया था। राहत इंदौरी कहते हैं- "जिसे मुलाक़ात कहा जाए, वो नूर ग़ौरी ने करायी थी। हमारे इन्दौर के ही हैं, मेरे अज़ीज़ हैं। जब मैं मुम्बई में फ़िल्में कर रहा था, तब मैं और नूर ग़ौरी साथ ही रहते थे। उनके दिलीप कुमार से बहुत अच्छे मरासिम थे... घर में सीधी इन्ट्री थी, उन्हीं के साथ मैं दिलीप कुमार से मिला था। फिर मिलने का सिलसिला चलता रहा। नूर ग़ौरी को उन दिनों अधूरी फिल्म मिल गयी थी, जिसका प्रोड्यूसर भाग गया था। वो 'दिलबर' पूरी कर रहे थे। उन दिनों दिलीप कुमार से कई बार मुलाक़ात हुई। एक बार मैं और नूर ग़ौरी उनसे मिलने गये तो वो घर के पिछले हिस्से में थे और नूर भाई की वहाँ तक इंट्री थी। हम सीधे पहुँच गए। देखा कि चार-छह लोगों को दिलीप साहब फ़िल्म का सीन समझा रहे हैं। फ़िल्म थी 'कलिंगा' जो पूरी नहीं हो पायी और मुझे पहली बार पता चला ऐसे भी समझाया जाता है।

चार-छह काग़ज़-क़लम लेकर बैठे हुए थे, दिलीप साहब शॉट समझा रहे... बाप के सामने उसका बिगड़ा हुआ बेटा है और वो अपने बाप पर बन्दूक़ निकाल लेता है। बाप भी बन्दूक निकालता है और गोली चल जाती है। बिगड़े हुए बेटे को लग जाती है। वो ख़ून से लथपथ पड़ा है। बाप के हाथ भी ख़ून से लाल हैं, जो आसमान की तरफ़ उठा रहा है और दिलीप साहब लिखने वालों से कह रहे हैं, बताइए यहाँ वो ख़ुदा से क्या बात करेगा? सबने लिखना शुरू किया। उनकी नज़र मेरी तरफ़ पड़ी, बोले मियाँ आप भी लिखते हैं, चलिए आप भी लिखिए। मैंने भी कोशिश की, हुआ कुछ नहीं। बात आयी-गयी हो गयी। कहने का मतलब... वो किस तरह डूब जाया करते थे। तभी मुझे एहसास हुआ कि आख़िर उन्हें इतना बड़ा फ़नकार क्यों माना जाता है। शायरी से उनको बेपनाह मोहब्बत है और मैं हैरत में रह जाता था, जब वो नज़ीर अकबराबादी, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, जोश मलिहाबादी की ग़ज़लें एक के बाद एक सुना देते थे। उनका इन्तेख़ाब ब-कमाल है, उर्दू उनकी बेमिसाल है और जिस

अन्दाज़ में बोलते हैं, पलक भी झपकती नहीं है, लगता है, कोई पढ़ा-लिखा बोल रहा है। मेरे बारे में आठ मिनट बोला। कुछ लिखा हुआ नहीं था, पर जो बोला वो सनद हो गया और मेरे इस सफ़र का ईनाम है।

मुझे याद है नूर ग़ौरी की 'दिलबर' तो ़फ्लॉप हो गयी थी। हाँ उसमें मैंने हलकी-फुलकी एक्टिंग भी कर ली थी। एक्टिंग क्या थी, उन्होंने खड़ा कर दिया था, मैं खड़ा हो गया था। हालाँकि मेरी मौजूदगी का अच्छा फ़ायदा मिला और उन इलाक़ों में मेरे फ़िल्मी पोस्टर लगा दिये गये, जहाँ मुशायरे के ज़रिये मुझे पहचाना जाता था। लोग देखने भी आये। फ़ायदा भी मिला। 'दिलबर' पिट चुकी थी, लेकिन नूर ग़ौरी का शौक़ बरक़रार था। उन्होंने दूसरी फ़िल्म 'सबसे बड़ा बाज़ीगर' का ऐलान भी कर दिया। उसका मुहूर्त कार्ड लेकर मैं और नूर ग़ौरी पहुँचे दिलीप साहब के पास। कार्ड दिया। उन्होंने पढ़ा, कहा- आपने सबक़ नहीं लिया? नूर ग़ौरी का जवाब था- कोई राजस्थानी है, ज़मीन बिकी है, पैसा लगा रहा है, आप चाहें तो राहत इन्दौरी से पूछ लें। दिलीप साहब ने मेरी तरफ़ देखा और बोले- जैसा मुद्दई, वैसा गवाह। दिलीप साहब ने नूर ग़ौरी को बहुत वक़्त दिया... 'दिलबर' को सुधारने की कोशिश की, कई शो देखे, तरमीम कराया, पर कुछ हुआ नहीं, क्योंकि उसमें कुछ हो नहीं सकता था।

दिलीप कुमार और राहत इंदौरी की जो भी मुलाक़ात रही है उसके गवाह नूर ग़ौरी हैं, जिन्हें सब कुछ याद है। कहते हैं- "मेरा अभी भी युसूफ भाई (इसी तरह वो दिलीप कुमार को पुकारते हैं) से मिलना है। उन्हें अब कुछ याद नहीं है, पर सायरा आपा हैं जो माँ की तरह उनकी ख़िदमत कर रही हैं। वो कहती भी हैं कि मेरे पास कोहिनूर हीरा है जो मुझसे अल्लाह के सिवा कोई छीन नहीं सकता है। जहाँ तक बात राहत इंदौरी की है, हम एक ही मोहल्ले के हैं। नयापुरा में रहते थे। बरसों का रिश्ता है। उस ज़माने में मेरा ज़्यादा वक़्त मुम्बई में गुज़रता था। राहत भाई वहीं काम कर रहे थे। फिर हम साथ रहने लगे। एक ही मकान में रहते थे और अच्छा ख़ासा वक़्त गुज़ारा है। मैंने 'दिलबर' फ़िल्म बनायी थी। राहत भाई कुछ देर के लिए परदे पर भी आये थे, उन्होंने आवाज़ में जो पढ़ा था आज भी याद है-

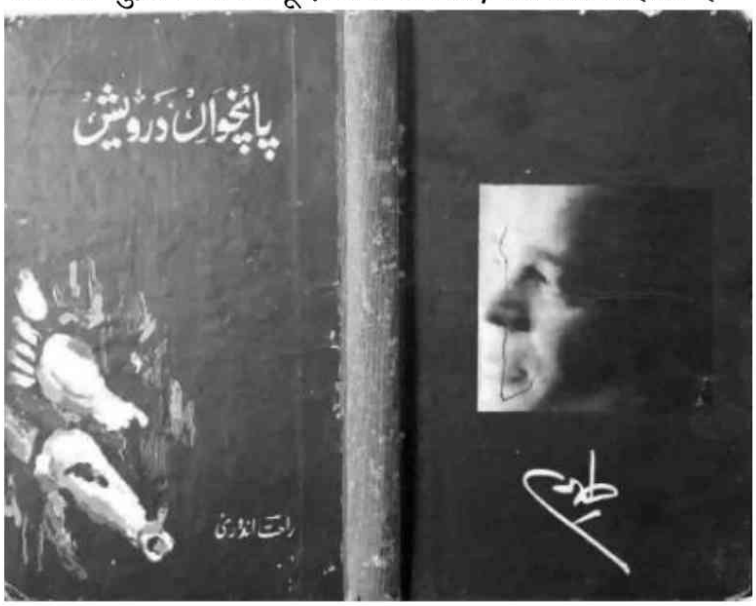
मुहब्बत के सफ़र में हमसफ़र भी छूट जाते हैं
जिन्हें आँखें सजाती हैं वो सपने टूट जाते हैं
मेरे ख़ुदा कोई इतना न प्यार को तरसे
जुदा न कर किसी दिलबर को अपने दिलबर से

यूँ बदल जाते हैं मौसम हमें मालूम न था
प्यार है प्यार का मातम हमें मालूम न था
इस मुहब्बत में यहाँ किसका भला होना है
हर मुलाक़ात की क़िस्मत में जुदा होना है

किसी को प्यार की सच्चाई मार डालेगी
किसी को दर्द की गहराई मार डालेगी
बिछड़ के कोई मुहब्बत में जी नहीं सकता
जो बच गया उसे तन्हाई मार डालेगी

इस आवाज़ से उत्तर प्रदेश में फ़िल्म को ख़ूब फ़ायदा हुआ, अच्छी कमाई हुई। सब राहत भाई को देखने आ रहे थे। पहली बार वो मेरे साथ ही यूसुफ़ भाई से मिले। उसके बाद मुलाक़ात होने लगी और उनके लिए यूसुफ़ भाई ने सिर्फ लिखा ही नहीं बोला भी है। पहली बार जब मिले तो राहत भाई से उन्होंने कहा, मैंने शायरी ख़ूब सुनी है, लेकिन इस उम्र में इतनी अच्छी शायरी नहीं सुनी। जब भी हम उनके घर जाते, वो राहत भाई के शेर ज़रूर सुनते थे। दिलबर के बाद मैंने सबसे बड़ा बाज़ीगर बना ली थी, जिसे पार्थो घोष ने डायरेक्ट किया था। ये वही हैं जिन्होंने 100 डेज़, अग्निसाक्षी सहित और भी कई फ़िल्में की थीं। राहत भाई ने इसमें दो गाने लिखे थे। वो भी शूट हो गये थे पर फ़िल्म परदे पर आ नहीं पायी। जितना भी वक़्त राहत भाई के साथ गुज़रा, बेहतरीन रहा है और कई यादें हैं। अब ज़्यादा मुलाक़ात नहीं होती है, पर जितना मिलना रहा है वो काफ़ी है। अच्छा लगता है कि हमारे मोहल्ले के शायर दुनियाभर में सुने जा रहे हैं।"

राहत इंदौरी का वजूद,
शेर-ओ-सुख़न और उर्दू ज़बान के लिए क़ीमती तोहफ़ा है



हिन्दुस्तान उर्दू की जा-ए-पैदाइश है। इसकी नश्वोनुमाँ और परवरिश में कैसे-कैसे असातिज़ा ने कांट्रीब्यूट किया, जिनका नाम शेरो-अदब और पोएटिक टैलेन्ट में यूनविर्सल लिटरेचर से हटाया नहीं जा सकता। आज हम जिस भूख के दौर से गुज़र रहे हैं, डॉ. राहत इन्दौरी जैसे शायर जो ये शेर याद दिलाते हैं-

जहाँ में एहले इमाँ सूरत-ए-ख़ुर्शीद जीते हैं
इधर डूबे उधर निकले, उधर डूबे इधर निकले

इनके कलाम में बरजस्तगी और मानी आफ़रीनी और दौरे-हाज़िर का अक्स है। एक सख़्त जान, बेरहम क़िस्म का मुआशरा, जो नश्वोनुमाँ पा रहा है। नाइंसाफ़ी और बदअमनी की जो हवा इन दिनों चल रही है कि क़दम-क़दम पर लहूलुहान मनाज़िर का सामना होता है, उससे एक हस्सास इंसान के एहसासे-लताrफ को और उसके किरदार की पाकीज़गी को ठेस पहुँचती है। राहत इन्दौरी की शायरी में वाज़े तौर पर उसका बयान है। उनकी तख़लीक़ 'पाँचवाँ दरवेश' को मैं जहाँ से देखता हूँ वहीं नज़र ठहर जाती है। मैंने अक्सर ये किताब पढ़ी है। उनके मिज़ाज में तल्ख़ी और तुर्शी ज़्यादा महसूस करता हूँ। हुस्न-ओ-इश्क़ का मुआमला, रूमानी क़िस्म के अशआर जल्द याद हो जाते हैं और बहुत जल्द ज़ेहन में बैठ जाते हैं, लेकिन इनका कलाम उन सख़्तियों और ज़फाकशियों की आईनादारी करता है, जिन्हें दौरे-हाज़िर की तमामतर हॉस्टिलिटीज कहा जा सकता है। चाँद से लोग क्या-क्या ताबीरें दिया करते थे, लेकिन राहत लिखते हैं-

बरछी लेकर चाँद निकलने वाला है
घर चलिए अब सूरज ढलने वाला है

मज़ीद एक हमला होगा, एहसासे-लतीफ़ पर। तुम्हारे दिल की जितनी तारीफ़ करूँ उतनी कम है। इनका वजूद शेरो-सुख़न और उर्दू

ज़बान के लिए बड़ा क़ीमती तोहफ़ा है। कहने के लिए तो जितनी बात करूँ, कम होगी; मैं सिर्फ इस पर इक़्तेफ़ा करूँगा कि ये अशआर पढ़ने के क़ाबिल तो हैं ही, इसके साथ एक अहसासे-मौजूदा सोशियो इकॉनामिक हिस्ट्री की सख़्तियाँ हैं। इसके पसे-मंज़र में उनका कलाम और अज़ीमतर हो जाता है।

इंदौर से लाहौर तक रिसर्च

हदीस, बोझ में दबे थे, मैंने उन्हें निकाला



राहत साहब अपने दोस्त अज़ीज़ इरफ़ान के साथ

अज़ीज़ इरफ़ान उनमें शामिल हैं, जो राहत इंदौरी के क़रीब हैं। वो उन तीन में भी हैं जिन्होंने राहत इंदौरी पर पीएचडी की है। एक पीएचडी लाहौर में हुई है, एक अनवर जलालपुरी ने करवायी है और एक अज़ीज़ इरफान हैं, जिन्होंने इंदौर में काम किया है। कहते हैं- राहत से मेरा रिश्ता पुराना है, हम, उम्र के इस दौर में क़रीबी बातों को एक-दूसरे से करने लगे हैं, मतलब दोस्ती सबसे अच्छे दिनों में पहुँच गयी है।

बात 1967 की है। तब मैं आईके (इस्लामिया करीमिया) में था। अज़ीज़ इंदौरी साहब वहीं थे और राहत इंदौरी भी हमारे साथ थे। बस यहीं सिलसिला शुरू हुआ। फिर मैं अलीगढ़ चला गया, वहाँ से ओमान जाना हुआ। इक्कीस बरस मैं वहाँ रहा हूँ, लेकिन राहत इंदौरी से मेरी दोस्ती में कोई फ़र्क़ नहीं आया। ओमान में रहने के बाद भी बात होती रही और जब भी राहत इंदौरी वहाँ आये मेरे मेहमान रहे। मैं जब अलीगढ़ में था, तब वो आते थे, साथ हम रहते थे और उसके बाद जब भी मैं इंदौर आया हूँ, मुझे यहाँ जो करना होता था, उसमें एक काम राहत इंदौरी से मिलना रहता था। अब तो मिलना-जुलना लगा रहता है। मैंने उनकी किताब 'लम्हें-लम्हें' पर काम किया है और उसी वक्त मेरी मुलाक़ात मक़बूल फ़िदा हुसैन से हुई थी, जिन्होंने उस किताब का कवर पेज बनाया है। मैंने उनका इंटरव्यू किया था। असल में राहत इंदौरी के बड़े

भाई आक़ील क़ुरैशी का मैं दोस्त रहा हूँ, लेकिन अब राहत इंदौरी से याराना है, वो मुझसे हर तरह की बात करते हैं। अभी जब आदिल का इंतक़ाल हुआ, तब हमारी लगातार बातचीत हुई और उसमें बहुत कुछ ऐसा था, जो राहत पहली बार मुझे बता रहे थे। इंदौर के शायरों और मुशायरों पर उनकी मुझसे बात होती रहती है और मुल्क के जो हालात हैं, उस पर भी। अल्लाह से दुआ है दोस्ती का सिलसिला यूँ ही चलता रहे।

इस तवील अर्से में बारहा उनकी शायरी पर बोलने और लिखने के मौक़े आये। मैं खुशक़िस्मती से हिन्दोस्तान के उन चन्द लोगों में अपने आपको शुमार करता हूँ, जिनको राहत अपने शेर सबसे पहले सुनाते हैं। मुझे ऐसे बेशुमार मौक़े याद हैं, जब रात या दिन में किसी भी वक़्त राहत का फोन आया। उस तरफ़ से कह रहे हैं- अज़ीज़ भाई, अभी-अभी शेर हुआ है, सबसे पहले आपको सुना रहा हूँ। ख़ैर मेरे एक केन्डिडेट ने राहत इन्दौरी पर रिसर्च का फ़ैसला किया। डॉ. हदीस अंसारी की निगरानी में पीएचडी के लिए रजिस्ट्रेशन हुआ। काम शुरू हुआ, लेकिन उलझनों के सबब अधूरा छूट गया।

हदीस अंसारी की ख़ातिर राहत ने इस्लामिया करीमिया कॉलेज के उर्दू डिपार्टमेंट से इस्तीफ़ा देकर जगह ख़ाली की थी। हदीस उस बोझ के तले दबे हुए थे और एहसानमंदी का तक़ाज़ा था... किसी भी सूरत राहत पर पीएचडी करवाकर सुबुकदोश हों, लिहाज़ा अपनी मरज़ी ज़ाहिर की और कहा मैं रजिस्ट्रेशन करवा लूँ। मैं टालमटोल करता रहा कि ज़िन्दगी की शाम है, मैं पीएचडी करके क्या करूँगा, लेकिन हदीस अंसारी की मर्ज़ी, इसरार, तक़ाज़ा और फिर ज़िद बन गयी और मुझे झुकना पड़ा। दो ढाई साल में काम पूरा हो गया, जिससे डॉ. हदीस अंसारी, डॉ. मुख़्तार शमी (एग्ज़ामिनर) और ख़ुद राहत बहुत मुतमईन हैं। मुझे मालूम है कि युनिवर्सिटियों में भी राहत की शायरी पर काम हो रहा है, लेकिन मुझे नहीं मालूम पीएचडी मुकम्मिल करने वाला मैं पहला हूँ, दूसरा या तीसरा हूँ।

दवा साथ चलती है

दो-चार बीमारियों से राहत इंदौरी की दोस्ती हो गयी है

हमारे कुछ गुनाहों की सज़ा भी साथ चलती है
हम अब तनहा नहीं चलते दवा भी साथ चलती है

दवा सिर्फ़ मुनव्वर राना के साथ नहीं चल रही है, राहत इंदौरी भी दवा के सहारे चल रहे हैं, पर वो चल दुआओं के सहारे रहे हैं। उन्होंने कभी जिस्म को अहमीयत नहीं दी, वो हक़ नहीं दिया, जिसका हक़दार था। दवा से भागते रहे, न कभी उस पर यक़ीन किया। पर अब मजबूरी बन गयी है। हिंदुस्तान के अलावा लंदन, अमेरिका के डॉक्टर भी उनके जिस्म को परख चुके हैं। सबका यही कहना है कि जो करते रहे हैं आगे नहीं चलेगा; अगर जिंदा रहना है तो दवा पर यक़ीन कीजिए। देर से सही राहत इंदौरी को समझ आ गया है कि डॉक्टर की सलाह मानने में ख़ैर है। कभी राहत इंदौरी ने शेर कहा था-

बिखर-बिखर सी गई है किताब साँसों की
ये काग़जात ख़ुदा जाने कब कहाँ उड़ जाए।

जिस्म को मुशायरे की भट्टी में ढालने के बाद अब वो क़मजोर पड़ गया और वैसे भी राहत इंदौरी ने उससे दस आदमियों का काम लिया है। राहत इंदौरी की जिंदगी में कभी रात नहीं आयी; उन्होंने अल्लाह की दी हुई रातों को आँखों में ग़ुजारा है। दिन सफ़र और रात मुशायरा में निकले, बदन आराम को तरस गया, उसने हाथ ऊँचे कर दिये। अब बेटे सतलज के कंधे पर हाथ रखकर सफ़र करने लगे हैं। दो-चार बीमारियों से दोस्ती हो गयी है और वो भी साथ चल रही हैं। सब अभी हुआ है ऐसा नहीं है। अरसे पहले राहत इंदौरी को दिल का दौरा पड़ा था। किसी मुशायरे से लौटते वक़्त दिल ने दग़ा दिया, मुश्किल से इंदौर तक पहुँचे। लाइफ़ लाइन हॉस्पिटल में उनको भर्ती किया गया। बस, बीमारी ने दाख़िला ले लिया और वो आज भी जिस्म में मौजूद है, बल्कि उसने अपना परिवार बढ़ा लिया है, वक़्त-वक़्त पर करतब दिखाते रहती है। लेकिन जिस्म भी राहत इंदौरी का है, उसकी ज़्यादा चल नहीं पाती है। अभी आस्ट्रेलिया गये थे, तब तबियत बिगड़ गयी थी। होटल से उन्हें अस्पताल ले जाना पड़ा था और लंदन में भी ऐसा हुआ था। घर के लोग अकेले उन्हें कहीं जाने नहीं देते हैं। सतलज हमेशा साथ रहता है और कहता भी है कि ज़िंदगी में इससे बढ़कर क्या हो सकता है कि मैं पापा की ख़िदमत कर रहा हूँ। लेकिन जैसे ही नज़र चूकती है, राहत साहब कुछ न कुछ ऐसा कर लेते हैं जो उनकी सेहत के लिए ठीक नहीं है। उनका शेर है-

जिस्म से साथ निभाने की मत उम्मीद रखो

इस मुसाफ़िर को तो रस्ते में ठहर जाना है

जब पहली बार राहत इंदौरी के दिल ने दग़ा दिया था और उन्हें अस्पताल में दाख़िल किया गया था, तब उनके साथ जो थे, उनमें शायर अहमद निसार भी थे जिन्होंने ख़ासा वक़्त अस्पताल में गुज़ारा था। निसार कहते हैं- "सिर्फ़ मेरे लिए नहीं, हर अदब नवाज़ के लिए बुरी ख़बर थी, जिसे मैं भूल जाना चाहता हूँ, पर जिससे आप मोहब्बत करते हैं, उसकी कोई भी बात भूलना आसान नहीं होता। जब भाईजान (राहत इंदौरी को निसार अहमद इसी तरह पुकारते हैं) को भर्ती किया गया तो चौबीस घंटे का वक़्त डॉक्टरों ने दिया था। हम लोग ख़िदमत में लगे थे। भाभी किसी काम से घर गयी थीं। मैं भाईजान के सिरहाने बैठा था। तभी उन्होंने जोर से हिचकी ली। मुझे समझ आ गया, गड़बड़ है। मैं तेज़ी से डॉक्टर की तरफ़ भागा। मैंने उनका गिरेबाँ पकड़ लिया। वो घबरा गये। उन्होंने मुझसे ऑक्सीजन सिलेंडर लाने को कहा। मैं उसे घसीटता हुआ कमरे में पहुँचा और डॉ. साहब तो भाईजान के सीने पर बैठ गये थे। पंपिंग शुरू हुई और एक- आध मिनट की कशमकश के बाद फिर भाई जान ने ज़ोर से साँस ली। उसके बाद डॉक्टर ने इंजेक्शन दिये, मशीनों से उनको लाद दिया। जो हिचकी थी, उसने साँस रोक दी थी। पर उसके बाद ख़ुदा ने जो साँस दी, वो हमेशा सलामत रहे, यही दुआ है।

राहत इंदौरी कहते हैं- "बीमार हुआ, अल्लाह ने ठीक कर दिया, लेकिन बीमारी आ चुकी थी, जो कभी भी सिर उठा लेती है। शक्कर का मसला है ही, आँखें भी कमजोर हो गयी हैं, चलने में दुश्वारी रहती है... पर कोई अफ़सोस नहीं; जिंदगी ख़ूब गुज़री है और अभी भी अल्लाह चला रहा है। मैंने अपनी सेहत का ज़िक्र ज़्यादा कभी किया नहीं, क्योंकि लोग आते मुहब्बत से हैं, हालचाल पूछते हैं, पर बीमार बना देते हैं। मेरा शेर भी है-

अफ़वाह थी कि मेरी तबीयत ख़राब है
लोगों ने पूछ-पूछ के बीमार कर दिया

हालाँकि कोई मेरी वजह से परेशान हो मुझे मंज़ूर नहीं है; उनकी मुहब्बतें हैं और अल्लाह का शुक्र है, सब अच्छा है।

सियासत बिगाड़ देती है

हिन्दुस्तान मुहब्बतों का मुल्क़ है, हमेशा ऐसे ही पहचाना जाता रहेगा

हों लाख ज़ुल्म मगर बद्दुआ नहीं देंगे
ज़मीन माँ है ज़मीं को दग़ा नहीं देंगे

राहत इंदौरी की शायरी में अगर इंक़लाब है तो उन्होंने वतन को मज़्बूत करने के लिए भी क़लम का इस्तेमाल किया है, वक़्त-वक़्त पर रहनुमाई की है, हर तरह से कट्टरवाद के ख़िलाफ़ रहे हैं। मज़हब की उन्होंने इ़ज्ज़त की है, लेकिन पाखंड को बख़्शा नहीं है, उस पर हमेशा बात कही है, फिर चाहे मज़हबी पेशवा नाराज़ ही क्यों न हो जाएँ। अगर कमज़ोर की बात करना उनका काम रहा है तो पाखंड और फ़िरक़ापरस्ती को भी उन्होंने छोड़ा नहीं है। सियासत उनके निशाने पर हमेशा से रही है और वो कहते हैं इंसान जहाँ से लड़ रहा है, वजह सियासत है, क्योंकि ये किसी को साथ रहने नहीं देती है, इसे इत्तेहाद से डर लगता है। बार-बार कुछ न कुछ ऐसा करती है, जिससे शिजरा बिखरे, लोग एक-दूसरे के दुश्मन हो जाएँ और इसकी झोली वोट से भरी रहे। अँग्रेज़ों की जो सियासत थी, अभी भी जारी है। वो लड़ाकर ताक़त हासिल करते थे और यहाँ भी ताकत के लिए किसी को मिलने नहीं दिया जा रहा है; लड़ाकर ही ताक़त वसूली हो रही है। सरकार किसी की हो, चेहरा कोई हो, इत्तेहाद कभी इनकी पसंद नहीं रहा है। जिनके वोट से ताक़त हासिल करते हैं, उन्हें कभी ताक़त में नहीं आने देते। राहत इंदौरी का शेर है-

मिलाना चाहा है, इंसाँ को जब भी इंसाँ से
तो सारे काम सियासत बिगाड़ देती है

राहत इंदौरी कहते हैं- "सियासत की दीवारें हैं, जो हमारी आवाज़ रोकती हैं और इंसानों के बीच बैरियर बन जाती हैं, कोई इसे तोड़ नहीं पा रहा है। सबको पता है, जितने भी फ़साद हैं, उसके पीछे सियासत है। लोग इनके बारे में बोलते हैं, इनकी फ़ितरत से वाक़िफ़ हैं, लेकिन सियासी डमरू बजता है तो सब पीछे दौड़ने लगते हैं। हम तो जिगर के शेर पर अमल करते हैं-"
उनका जो फ़र्ज़ है वो अहले-सियासत जानें
मेरा पैग़ाम मुहब्बत है जहाँ तक पहुँचे

सियासत अपने ढंग से अपना काम करती है। हालात का फ़ायदा उठाकर अपनी राह तैयार की जाती है। यही हमारा मुक़द्दर बनकर रह गया है। गंदी सियासत का सामना करना पड़ रहा है। सियासत में अच्छे लोगों की आमद न होने तक यही सिलसिला रहेगा। दिक़्क़त कि अच्छे लोगों का यहाँ गुज़ारा भी नहीं है, पर ख़ामोश नहीं बैठा जा सकता है। हाँ, अब कुछ ऐसी मिसालें सामने हैं, जिन्होंने सियासत बदलने की

कोशिश में कामयाबी हासिल की है। उन्हें अभी लोगों से ताक़त मिली है, उसके बदले में वो क्या दे रहे हैं, इसका फ़ैसला होना बाक़ी है। अगर कुछ नया करते हैं तो इसे बदलाव कहा जा सकता है, वरना जो हो रहा है, उसमें भी कुछ नाम और जुड़ जाएँगे। फ़िलहाल मुल्क सख़्त दौर से गुज़र रहा है, लेकिन इत्मिनान है, क्योंकि मुश्किल हालात में ही इंक़लाब आता है और फिर हमारा मुल्क हमेशा से मोहब्बत पसंद करता रहा है। नफ़रतों का सफ़र चंद रोज़ का है, जो हो रहा है या किया जा रहा है वो हमारी हज़ारों साल से क़ायम साझा तहज़ीब को ख़त्म नहीं कर सकता। सिर्फ़ नारे और तक़रीरें हमारा भाईचारा नहीं मिटा सकतीं। लेकिन जिस तरह सियासत और नेता झूठ की दुकान लगाये बैठे हैं लोग उनके झूठ में आ रहे हैं, अफ़सोसनाक है।

वाक़िफ़ है ख़ूब झूठ के फ़न से ये आदमी
ये आदमी ज़रूर सियासत में जाएगा

मुशायरे में जो गंदगी आयी है उससे राहत इंदौरी नाराज़ हैं। वो इसका तो इक़रार करते हैं कि बात कहना पड़ेगी, लेकिन जितनी बात है, उतनी ही कही जाए; ऐसा नहीं है कि उसकी वजह से शोहरत में इज़ाफ़ा होने लगे और जिसको रोकने का काम शायर करते रहे हैं उसे ही बढ़ाने लगें। एक ऐसी हवा चली थी जब सब उसी तरफ़ बहने लगे थे और ऐसा होता है, पर होना नहीं चाहिए। कवि हो या शायर, उन्हें अवाम की नुमाइंदगी करना है। पर अकसर चूक हो जाती है। हालाँकि राहत इंदौरी ने भी तब शेर कह दिये थे-

वो बेवक़ूफ़ ज़मीं बाँटकर बहुत ख़ुश है
उसे कहो कि अभी आसमान बाक़ी है

फिर एक बच्चे ने लाशों के ढेर पे चढ़कर
ये कह दिया कि अभी ख़ानदान बाक़ी है

राहत इंदौरी कहते हैं- "शायरी में बदलाव 1992 के बाद आया और सिर्फ़ यहीं नहीं, कवि सम्मेलन भी बदल गये थे। कहा जा सकता है कि शेर और कविता... हिन्दू-मुसलमान हो गये थे। जो डटे रहे और जिन्होंने इस गंदगी को साफ़ करने की कोशिश की, उसी का नतीजा है कि अब ऐसे लोगों की तादाद में इज़ाफ़ा है, जो सिर्फ़ शायरी सुनना चाहते हैं।" अलग-अलग मौक़े पर राहत इंदौरी ने जो शेर कहे हैं, उन्हें यहाँ शामिल किया जा सकता है।

ताक़ में बैठा हुआ बूढ़ा कबूतर रो दिया
जिसमें डेरा था उसी मस्जिद में ताले पड़ गए

नमाज़े-मुस्तक़िल पहचान बन जाती है चेहरों की

तिलक जिस तरह माथे पर कोई हिन्दू लगाता है

स्टेज कोई भी हो सरदार वही हैं

नवजोत सिंह सिद्धू बोले- ऐसा शो पहले नहीं हुआ



राहत साहब कपिल शर्मा शो में कपिल शर्मा,
शबीना अदीब और कुमार विश्वास के साथ

जब पता चला कपिल शर्मा के कॉमेडी शो में राहत इंदौरी आ रहे हैं और साथ में कुमार विश्वास भी होंगे, तो लगा कविराज के लिए तो ठीक है, वो कॉमेडी कर सकते हैं और जुमलेबाज़ भी हैं, लेकिन राहत इंदौरी ने कहीं ग़लत गेंद तो नहीं खेल ली। मैदान उनका नहीं है और उस मैदान में उतर रहे हैं जो उनकी फ़ितरत के ख़िलाफ़ है और उनके मिज़ाज से इंसाफ़ भी नहीं करता है। सामने शायर, गीतगार, पेंटर राहत इंदौरी थे और इसमें कहीं भी ग़ैर संजीदा किरदार नहीं था। पर एक बार फिर राहत इंदौरी ने चौंका दिया और सारे अंदेशों को कूड़ेदान के हवाले कर दिया। जब वो रंग से ल़फ्ज़ की तरफ आ रहे थे तब भी अंदेशे लगाये गये थे, ग़लत साबित हुए थे। वैसे राहत इंदौरी के सामने कपिल शर्मा का शो चुनौती तो था, क्योंकि अपनी शायराना शिनाख़्त को ज़िंदा रखना था और जिस ठहाके के लिए शो मशहूर है उसमें भी कमी नहीं आने देना थी। कहीं कोई कमी आयी भी नहीं। राहत इंदौरी तो बस छा गये। शायरी पर दाद ली, जुमलों से पेट पकड़ने पर मजबूर कर दिया और वहाँ मौजूद हर बंदा उन पर फ़िदा था।

वैसे शो में जाना चाहते नहीं थे। वहाँ से लगातार फोन आ रहे थे और राहत इंदौरी टाल रहे थे, क्योंकि काम उनके मिज़ाज का नहीं था। उनसे कह दिया गया था किसके साथ आना है आप तय कर लीजिए। इसके लिए दुबई का मुशायरा मददगार रहा, जहाँ राहत इंदौरी और कुमार विश्वास की जोड़ी हिट थी। बस, बुलाने का मन बना लिया गया, पर राहत इंदौरी की जो भी शर्तें थीं, उसमें सबसे ऊपर यही था कि शायराना हैसियत पर कोई आँच न आने पाये। ख़ैर, कुछ ही देर में राहत इंदौरी ने बता दिया कि स्टेज कोई भी हो, सरदार वही हैं। कपिल शर्मा थे, नवजोत

सिंह सिद्धू थे, कुमार विश्वास थे और कपिल की मस्ख़री मंडली थी; लेकिन सिर्फ राहत इंदौरी दिख रहे थे। एक संजीदा शायर जिसने इंक़लाब बोये हैं, कपिल शर्मा के शो का हीरो हो गया था। उन्होंने अपनी शायरी और हाज़िरजवाबी से बताया कि जो उनके पास है, सबके पास नहीं है। नवजोत सिद्धू तो दीवाने हो लिये थे, खड़े होकर तालियाँ बजा रहे थे। उन्हें कहना पड़ा- "अब तक का सबसे अच्छा शो है।" और फिर शो की कामयाबी नापने के जो पैमाने हैं, वो सब बता रहे थे, कमाल हो गया है। इसके बाद राहत इंदौरी उन तक पहुँच गये जो शायरी या अदब से वाक़िफ़ नहीं थे। पॉकेट मीडिया ने उन्हें हाथों-हाथ लिया, दुनिया के उन ख़ित्तों में सुने गये, जो अभी तक उनसे आशना नहीं थे। इसके बाद यक़ीनन उनको नये चाहने वाले मिले और कपिल शर्मा के शो की ऊँचाई, यही वजह थी कि कुछ दिन बाद इसी शो में फिर राहत इंदौरी को बुलाया गया; पर इस बार न तो कुमार विश्वास थे, न ही शबीना अदीब। अशोक चक्रधर जोड़ लिये गये थे, पर जहाँ पहला शो ख़त्म हुआ था, उससे आगे दूसरा जा नहीं पाया। जो वजह रही, उनमें अशोक चक्रधर भी थे। उनके पास न तो कविता थी, न ही जुमले... इस इंतेख़ाब ने शो को कमज़ोर कर दिया।

दोनों शो में सतलज राहत मौजूद थे। कहते हैं- 'कभी भी कॉमेडी शो राहत साहब की पसंद नहीं था, पर उन्हें बताया गया, कोई हर्ज़ नहीं है... और जब इतना इसरार किया जा रहा है, क़ुबूल कर लेना चाहिए। पहले शो में हमें उम्मीद नहीं थी, ऐसा सब हो जाएगा, क्योंकि राहत साहब ने कोई तैयारी नहीं की थी, न ही उन्हें शो के बारे में ज़्यादा कुछ पता था, वहीं जाना और बस, उतर गये। असल में सुनील ग्रोवर को शायरी का शौक़ है और उन्होंने राहत साहब को सुना था। बाद में कपिल शर्मा भी पसंद करने लगे और अपनी शादी का दावतनामा भी दिया था... पर जाना नहीं हुआ।

आमिर ख़ान की रातों को 'राहत'

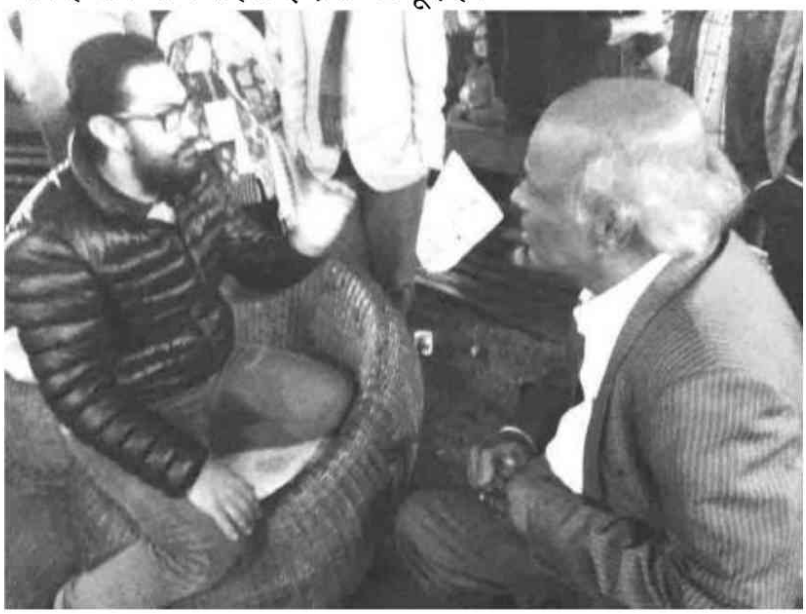
समझ नहीं आयेगा तो ख़ुद चिल्लाकर पूछ लेंगे



सतलज, राहत साहब, आमिर ख़ान

राहत इंदौरी की शायरी को दिलीप कुमार पसंद करते रहे हैं, आमिर ख़ान भी उनके चाहने वालों में हैं। वैसे यहाँ नवाज़उद्दीन सिद्दीक़ी का ज़िक्र कर लेते हैं, उन्हें भी राहत इंदौरी के कई शेर याद हैं। जब 'मांझी- द माउंटेन मेन' के प्रमोशन पर इंदौर आये, राहत इंदौरी से मिलने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की। मुलाक़ात हुई और सुर्ख़ियों में रही। नवाज़उद्दीन सिद्दीक़ी ने बताया– "राहत इंदौरी की शायरी उनके लिए क्या अहमियत रखती है। सोशल मीडिया पर वो उन्हें फॉलो करते हैं, अक्सर उनके शेर सुनते हैं।" यही वो प्लेटफार्म है, जिसने आमिर खान को भी राहत इंदौरी तक पहुँचा दिया था। लगातार कई रात उन्होंने 'राहत' हासिल की है। इसका असर हुआ और आमिर ख़ान ने अपनी सालगिरह पर राहत इंदौरी तक दावतनामा भेज दिया। ख़ुद बात की, जिसमें आने की इल्तिजा थी। आमिर के ख़ुलूस को राहत इंदौरी ने क़ुबूल किया। पंचगनी के फ़ार्म हाउस पर महफ़िल सजी। राहत इंदौरी पहुँच गये और वहाँ उनके इस्तक़बाल के लिए आमिर ख़ान और किरण राव के अलावा फ़िल्म स्टार थे। अनोखी शायराना महफ़िल थी, जहाँ आमिर खान ने बताया कि आखिर राहत इंदौरी को क्यों बुलाया और वो उन्हें कैसे जानते हैं? कहने लगे- "जब मेरी कोई फ़िल्म तैयार हो जाती है, मैं बेचैन हो जाता हूँ, मेरी नींद चली जाती है और जब तक फिल्म का पहला रिव्यू न मिल जाए, बेचैनी ख़त्म नहीं होती है। इस बार जब 'दंगल' बनकर तैयार हुई, बेचैनी ज़्यादा थी; मैं ख़ुद को पीछे खड़ा देख रहा था, तब मुझे राहत इंदौरी का सहारा मिला। शायद तुम्हें पता नहीं, इन मुश्किल रातों को मैंने राहत इंदौरी के साथ ही गुज़ारा है। दिन बेचैनी से गुज़रता था, पर रात को मैं

राहत साहब के साथ होता था। उनकी शायरी रहती थी, जिसे पढ़ता था, सुनता भी था; यू ट्यूब पर जहाँ-जहाँ भी राहत साहब मुझे मिले, मैंने सुन लिया, क्योंकि उससे मुझे ताक़त मिल रही थी, एहसास हो रहा था। बात इतनी परेशानी की नहीं है, जितनी मैंने बना रखी है। मैं राहत साहब का शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ, जिन्होंने मेरा इतना साथ दिया। तभी मैंने सोच लिया था इस बार सालगिरह का जश्न उन्हीं के साथ मनाया जाएगा और हमारे बीच राहत इंदौरी मौजूद हैं।''



आमिर ख़ान शेर पर चर्चा करते हुए

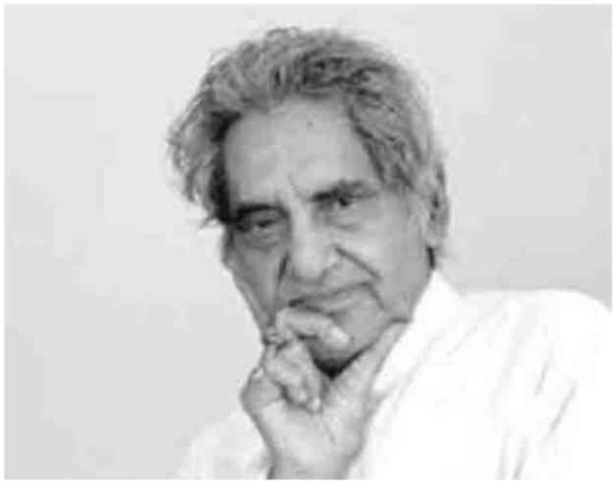
इसके बाद क़रीब घंटाभर सिर्फ़ राहत इंदौरी की शायरी थी, जिसका ख़ूब मज़ा लिया गया। राहत इंदौरी को जिस फ्लाईट से जाना था, वो देरी से थी। जैसे ही पुणे पहुँचे, सतलज राहत के फोन पर आमिर ख़ान थे, जिन्होंने राहत साहब से बात की... कहा, देर होने से परेशानी की कोई बात नहीं है, आप आराम से बचा सफ़र कीजिए, होटल में रुकिए, शाम को हम मुलाक़ात कर रहे हैं। जब उनकी महफ़िल में राहत इंदौरी पहुँचे तो इस्तक़बाल का ख़ास इन्तेज़ाम था। दरवाज़े पर आमिर खान खड़े थे। उन्होंने अपने सभी मेहमानों से राहत इंदौरी को मिलवाया। इन मेहमानों में प्रसून जोशी सहित कई थे, ऐसे भी थे जिन्होंने राहत साहब के साथ काम किया है। आमिर ने राहत इंदौरी से उनकी पसंद पूछी, जो चाय के तौर पर सामने आयी और किरण राव लेकर हाज़िर थीं। उसके बाद शायरी पर बात हुई। आमिर ने कई सवाल किये- पूछा शेर आते कैसे हैं, ख़याल कैसे दौड़ता है? राहत इंदौरी का जवाब था- कोई शेर कहता नहीं है, वो तो बस उतरते हैं। आमिर ने अपनी शायरी से मोहब्बत भी उनके सामने रखी। उसके बाद जब राहत साहब को माइक दिया, तो कह दिया आप उर्दू के मुश्किल ल़फ्ज़ का इस्तेमाल करने से चूकिएगा मत, क्योंकि जो हमें समझ नहीं आयेगा, ख़ुद चिल्लाकर पूछ लेंगे... पर पूछेंगे ज़रूर, क्योंकि जब तक समझेंगे नहीं, मज़ा अधूरा रहेगा। इस महफ़िल से पता चला, आमिर खान को राहत इंदौरी के कई शेर याद हो गये हैं।

उन्होंने शेर पढ़ा, जिसमें मिस्वाक का ज़िक्र था, तो आमिर ने सतलज राहत से उसका मतलब पूछा था। दाद का ये आलम था कि कई बार आमिर ख़ान ने खड़े होकर ताली बजायी। राहत इंदौरी को कई शेर याद दिलाये, पसंदीदा ग़ज़लें भी सुनीं। जाना कि कहाँ, कब, कैसे ग़ज़ल हुई। राहत इंदौरी ने पढ़ा-

जो दुनिया में सुनाई दे उसे कहते हैं ख़ामोशी
जो आँखों में दिखाई दे, उसे तूफ़ान कहते हैं

ख़ूब दाद थी, तालियाँ थीं। अब महफ़िल पूरी हो गयी थी। टेबल पर बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया। आमिर ख़ान ने राहत इंदौरी से पूछा कि अब आप मुम्बई क्यों नहीं आते हैं? लिख क्यों नहीं रहे हैं? राहत इंदौरी का जवाब था। शायरी का माहौल बचा नहीं है, मैं तुकबंदी नहीं कर सकता, सिर्फ़ उन्हीं के साथ काम कर सकता हूँ, जो शायरी समझते हैं, पर ऐसे कम हैं। मैं अब कहीं ज़्यादा जाता नहीं हूँ। आमिर ख़ान की महफ़िल रात को चीर रही थी, पर राहत इंदौरी की तबीयत इजाज़त नहीं दे रही थी। विदाई का वक़्त था। आमिर ख़ान और किरण राव गाड़ी तक छोड़ने आये। वादा हुआ, आगे भी महफ़िल जारी रहेगी। आमिर ने कहा अगर मैं शायरी और अदब के लिए कुछ कर पाया, तो मेरे लिए फ़ख्र की बात होगी।

सतलज राहत बताते हैं- "आमिर खान ने रोकने की कोशिश की। उन्हें लगा राहत इंदौरी रुकेंगे, क्योंकि इस तरह की पार्टी कौन छोड़ता है। पर उन्हें राहत इंदौरी की तबीयत का पता नहीं था... बोले, हमें आप होटल छुड़वा दीजिए, सुबह फ्लाइट पकड़ना है। आमिर खान ने मुझसे कहा- आप ऐसा कीजिए, राहत साहब को होटल छोड़कर वापस आ जाइए; पर पापा का इंकार था। सुबह हम पुणे के लिए निकल आये, लेकिन फ्लाइट नहीं मिली। राहत साहब परेशान थे। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि आख़िर उन्हें इंदौर पहुँचने की ऐसी जल्दी क्या है? यहाँ से मुम्बई पहुँचे और शाम को इंदौर की दो फ्लाइट थी। जो पहले जाने वाली थी, उसका किराया तीस मिनट देर से जाने वाली फ्लाइट से दुगना था। राहत साहब ने मुझसे पहले वाला टिकट लेने को कहा। मुझे लगा इतना महँगा टिकट क्यों, सिर्फ़ आधे घंटे का तो फ़र्क़ है। पर वो ज़िद पर थे। वही टिकट आया, हालाँकि वो फ्लाइट भी लेट हो गयी। एयरपोर्ट पर ही उन्होंने शेविंग की, तब मुझे पता चला कि इंदौर में कोई मुशायरा है और वहाँ उन्हें पहुँचना है। एयरपोर्ट से सीधे प्रेस क्लब पहुँचे, जहाँ उस्ताद रशीद शादानी साहब की नशिस्त थी। ज़ाहिर है, दोस्ती का वादा था, इसके अलावा कुछ हो नहीं सकता था। तब पता चला, पापा ऐसा भी करते हैं; मेरे लिए सीख थी। आमिर ख़ान की महफ़िल उन्होंने इसलिए छोड़ दी थी, क्योंकि उन्हें अपने दोस्त की नशिस्त में पहुँचना था।

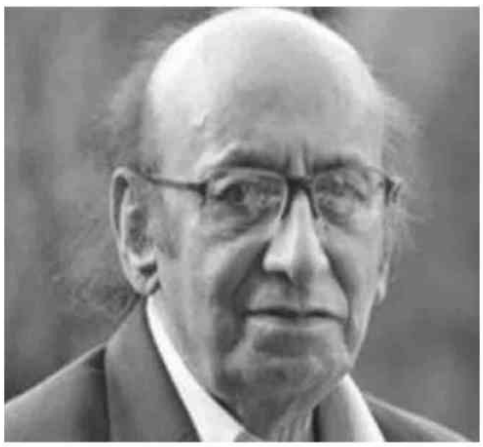


राहत साहब मेरे बड़े पुराने दोस्त हैं। तक़रीबन चालीस बरस से मेरी और उनकी दोस्ती क़ायम है। वो बड़े शायर और सच्चे इंसान हैं। सच्चा इंसान उसे कहता हूँ, जो अच्छाइयों को ही नहीं, बुराइयों को भी प्यार कर सके। मेरी ज़िंदगी भी अच्छाइयों और बुराइयों का नमूना रही है और राहत की भी। इसीलिए मैं कहता हूँ फ़रिश्तों के टूटे हुए ख़्वाब का एक नाम राहत है। उन्होंने जीवन और जगत के अलग-अलग पहलुओं पर जो ग़ज़लें कही हैं, वो हिन्दी-उर्दू की शायरी के लिए नया दरवाज़ा खोलती हैं। मौजूदा हालात पर जो उन्होंने ग़ज़लें कही हैं, वो आज की सियासत, आज की साम्प्रदायिकता, धार्मिक पाखंड और पर्यावरण पर बड़े ही ज़ज्बाती अंदाज़ से कही हैं। छोटी-बड़ी बहर की ग़ज़ल में उनकी पहचान रही है, जो मौलिक और बेहतरीन है। उनके कितने ही शे'र ऐसे हैं, जो ज़ुबान पर बरबस बैठ जाते हैं। नये रदीफ़, नयी बहर, नये मज़मून, उनकी ग़ज़लों में जादू की तरह बिखरा है और पढ़ने-सुनने वालों के दिलों पर छा जाता है। राहत की शायरी तसव्वुफ़ की बुलंदियों तक पहुँचती है। उनका शेर मेरे ज़ेहन में अकसर कौंधता रहता है-

किसने दस्तक दी ये दिल पर, कौन है?
आप तो अन्दर हैं, बाहर कौन है...

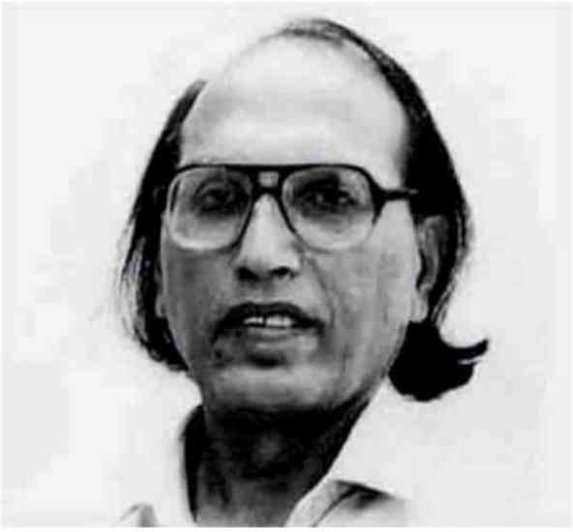
भाई राहत की सोच एक सच्चे इंसान की सोच है। वो अपनी उम्र में अधेड़ दिखाई पड़ते हैं, लेकिन आज भी उनके दिल में मासूम बच्चा है, जो बिना किसी डर के सच बोलना जानता है।

- गोपालदास नीरज



राहत की पहचान के कई हवाले हैं। वो रंगों और रेखाओं के फ़नकार भी हैं, कॉलेज में अदब के उस्ताद भी हैं, मक़बूल फ़िल्मी नग़मानिगार भी हैं, मशहूर शायर भी। इन सबके साथ सियासी, समाजी हालात के पसमंज़र में इंसान की ख़ारिजी और बातनी कशमकश के ऐनी गवाह भी हैं। उनकी शख़्सियत के तमाम पहलू उनकी ग़ज़ल के इशारों पर कनायों से छलकते दिखायी देते हैं। उनकी शायरी का मजमुई मिज़ाज तन्ज़ियाना और बाग़ियाना है, जो बयक-वक़्त हालात का शेरी तब्सरा भी है और शख़्सी तजज़िया भी। उनकी शेरी ज़बान भी उनके अफ्कार की तरह ज़हनी मसायल की आईनादार है। मुस्तमिल लिफ्ज़यात से गुरेज़ और इज़हार के रायज मामलाती पैरायों से परहेज़ ने उनकी तख़लीक़ी जसारतों का दायरा बनाया है। निजी मुशाहिदों और तजरिबों पर उनका यही ऐतमाद उनकी शेरी ज़ेहानत भी है और फ़नकाराना दयानत भी।

- निदा फ़ाज़ली



मैं जानता हूँ मुशायरे में कामयाबी के लिए शे'र से ज़्यादा स्टेज परफॉर्मेंस की एहमीयत है; लेकिन इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि डायस पर की गयी अदाकारी या तरन्नुम की जादूगरी से मशहूर होने वाला शे'र ही शायर का सबसे बड़ा दुश्मन है। आसान शोहरत उसकी मुकम्मल बदनामी का सुबूत होती है। लेकिन कैसी ही अदाकारी से, कितने ही ड्रामे से, कैसे ही तरन्नुम से अगर अच्छा शे'र सामने आता है और लोग उसे याद रखते हैं तो कोई हर्ज़ नहीं है। तरन्नुम और अदाकारी सुबह रुख़सत हो जायेंगे और शे'र सफ़र करता रहेगा। राहत इन्दौरी उन शायरों में से हैं, जिनकी ग़ज़लगोई से मुशायरे और अदब को इ़ज्ज़त हासिल होती है, डायस और किताब के फ़ासले कम होते हैं। रिसालों, अख़बारों और मुशायरों में लाखों शे'र ऐसे लिखे और पढ़े जाते हैं, जिनका अदबी हुनरमंदी से कोई ताअल्लुक़ नहीं होता। ऐसे ही शायरों के लिए राहत ने लिखा है-

हमने दो सौ साल से घर में तोते पाल के रक्खे हैं
मीर तक़ी के शेर सुनाना कौन बड़ी फ़नकारी है

राहत इन्दौरी के शे'र पढ़ने और सुनने के बाद कहा जा सकता है कि कहीं वो लहजे और आवाज़ को तलाशते हैं, किसी में ख़ानदानी मसलों को शराफ़त से हल करने का हौसला देते हैं, कहीं वो इंसानी शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते दिखायी देते हैं, कहीं इज़हार की आज़ाद लकीर को लम्बा करते हैं और यही सब राहत इन्दौरी को आज की ग़ज़ल का कभी न भूलने वाला शायर बनाते हैं।

- बशीर बद्र



गहरी से गहरी बात को आसानी से कह देने का हुनर जानने वाले राहत भाई से मेरा बड़ा लम्बा परिचय है। मुशायरे या कवि-सम्मेलन में वे कमल के पत्ते पर बूँद की तरह रहते हैं। पत्ता हिलता है, झंझावात आते हैं; बूँद पत्ते से नहीं गिरती। कई बार कवि और शायर कार्यक्रम शुरू होने से पहले मंच पर आसन जमा लेते हैं, लेकिन इस नये कॉरपोरेट ज़माने में चूँकि कवि-सम्मेलन या मुशायरा एक शो या इवेंट की तरह हैं तो शुरूआत से पहले आमतौर से शायर हज़रात मंच के पीछे खड़े रहते हैं।

नाम के साथ एक-एक करके उनको पुकारा जाता है, तब मंच पर आते हैं। जिस शायर के लिए ख़ूब देर तक ख़ूब सारी तालियाँ बजती रहती हैं, उनका नाम है राहत इन्दौरी। उस्ताद जैसे सादे लिबास में आते हैं, जो बिलकुल शायराना नहीं होता। तालियों के बदले हलका-सा झुककर सामईन को आदाब करते हैं और बैठने के लिए अपनी सुविधा की जगह देखते हैं। वैसे उन्हें पालथी मारकर बैठने में भी कोई गुरेज़ नहीं होता। बेपरवाही भी शाइस्तगी के साथ मंच पर बैठती है, जब राहत भाई बैठते हैं।

मेरी ख़्वाहिश है कि आँगन में न दीवार उठे
मेरे भाई, मेरे हिस्से की ज़मीं तू रख ले

आमतौर से हथेली को गद्दे से टिका देते हैं। मैं कई बार उनके गाढ़े साँवले सीधे हाथ को, जिसको टिकाते हैं, देर तक देखता रहता हूँ।

उनकी अँगूठियों को निहारता हूँ और उँगली और अँगूठे के पोरों को देखता हूँ कि कितनी ख़ुश होती होगी वो क़लम, जब इस हाथ से अशआर निकलते होंगे; ऐसे अशआर जिनकी ज़िन्दगी बहुत तवील है, बहुत लम्बी है। राहत साहब जब माइक पर आते हैं, लगता है ज़मीन से जुड़ा हुआ आदमी कुछ इस तरह खड़ा है कि ज़मीन ख़ुश है और वो जब हाथ ऊपर उठाते हैं, लगता है आसमान छू रहे हैं। वे तालियों से बहुत खुश हो जाएँ या अपने अशआर सुनाते वक़्त तालियों की उम्मीद रखें, ऐसा नहीं होता। उनका अन्दाज़, उनके अल्फ़ाज़, उनकी अदायगी, ज़बान पर उनकी पकड़, उनकी आवाज़ का थ्रो, उनके हाथों का संचालन, माइक से दूर और पास आने की उनकी कला, ल़फ्ज़ की आ़िखरी आवाज़ को खींचने का उनका कौशल, एक लाइन को कई बार दोहराकर सोचने का समय देने की होशियारी, एक भी शब्द कहीं ज़ाया न हो जाए, इसकी सावधानी; न कोई भूमिका और न उपसंहार... अगर होते हैं तो सिर्फ़ और सिर्फ़ अशआर। बहुत नहीं सुनाते हैं, लेकिन जो सुना जाते हैं, कम नहीं लगता। क्योंकि जो सुना गये, उस पर सोचने के लिए कई गुना वक़्त ज़रूरी होता है। सामईन को हैरत में डाल देते हैं। अपने जादू की तैयारी नहीं करते, लेकिन जब डायस पर आ जाते हैं, उनका जादू सिर चढ़कर बोलता है।

राहत इन्दौरी का होना एक होना होता है। अपनी निज की अनोखी शैली हैं, दुनिया-भर के सैकड़ों शायर उनको कॉपी करते हैं। लेकिन सिर्फ कहन की शैली से क्या होता है, शैली के पीछे सोच और समझ का भण्डार भी तो होना चाहिए।

जुगनुओं ने फिर अंधेरों से लड़ाई जीत ली
चाँद-सूरज घर के रौशनदान में रक्खे रहे

शेर बताता है कि उनके अन्दर इतना हौसला है कायनात से चाँद-सूरज को उठाकर वे अपने रौशनदान में रख सकते हैं। रौशनदान दोनों तरफ़ उजाला करता है, घर के अन्दर भी और घर के बाहर भी। अगर वे सूरज, चाँद हैं, तो मुझे लगता है राहत इन्दौरी एक रौशनदान हैं, जो अभ्यन्तर लोक को भी दैदीप्यमान् करते हैं, तो बहिर्लोक को भी चुँधिया देते हैं। बहुत लम्बी चर्चा की जा सकती है राहत भाई के बारे में। वो कवि-सम्मेलनों और मुशायरों के लिए एक राहत हैं, एक धरोहर हैं; क्योंकि वे सामईन की चाहत हैं। मैं दुआ करता हूँ कि राहत भाई कवि-सम्मेलन और मुशायरों को स्तरीय बनाये रखने में अपना योगदान दीर्घकाल तक देते रहें।

- अशोक चक्रधर



शर्मीला-सा नौजवान हमारे कॉलेज में तालिबे-इल्म बना और देखते ही देखते राहत इंदौरी बनकर तुलबा और तालेबात में इस क़दर मक़बूल हुआ, जितना मुशायरों के स्टेज पर। उसे इल्म बाँटने का शऊर भी आता है, मुशायरे पढ़ने का तरीक़ा और सलीक़ा भी। शेर-गोई के इस फ़न से वो वाक़िफ़ है, जिसे असली आगही का नाम दिया जा सकता है। इसलिए राहत की ग़ज़लों में उसी क़िस्म की ज़िद्दत-ताराज़ी के बहुत से नमूने मिल जाते हैं, जिसमें तंज़ का वो लहज़ा भी शामिल है, जो वक़्त की नाइंसाफ़ियों और असबियत की वजह से पैदा होता है। इस नौजवान ज़हन ने बुज़ुर्गों की तरह तड़्किबे को बयाँ करने का फ़न कहाँ से सीखा, इसकी सोच में तल्ख़ियाँ कहाँ से समा गयीं। इसकी ज़ुबान एहतेजाज करने पर क्यों अमादा हो गयी, इन सारे सवालों का जवाब आज की

नाइंसाफ़ियों में छुपा हुआ है, जो ऐसों को वैसा और वैसों को ऐसा कर रही है। सच्चा और हस्सास फ़नकार जब अपने ज़हन के दरवाज़े ख़ोलकर कुछ सोचता है, तो उसके तड़्किाबों में इज़ाफ़ा होता चला जाता है और वक़्त की गर्दिशों पर दहनी नज़र रखते हुए आईना-ए-दिल को दर्दो-ग़ुबार हालात से साफ़ करने की कोशिश में जुट जाता है। ऐसे में इसकी कोशिश एहतिजाजी भी हो सकती है और बग़ावत के क़रीबतर भी... राहत ने भी ऐसा कुछ किया है।

मालूम होता है इसका दिल मौजूदा नाइंसाफ़ियों से बहुत मुतास्सिर हुआ है... इसलिए वो बाज़ सूरतों में बहुत कड़वी-कड़वी बातें करने लगता है। मगर वो करे भी तो क्या करे; इस अहद ने हस्सास दिलों को ऐसी बातें करने पर मजबूर कर दिया है।

सवाल घर नहीं, बुनियाद पर उठाया है
हमारे पाँव की मिट्टी ने सर उठाया है

रौशनी की जंग में तारीकियाँ पैदा हुईं
चाँद पागल हो गया तारे भिखारी हो गए

बे-समर जान के हम काट चुके हैं जो शजर
याद आते हैं कि बेचारे हवा देते थे

सूरज से जंग जीतने निकले थे बेवक़ूफ़
सारे सिपाही मोम के थे घुल के आ गए

आग ओढ़े था मगर बाँट रहा था साया
धूप के शहर में इक तन्हा शजर ऐसा था

समाज के खोखले तसव्वुरात के ख़िलाफ़ राहत ख़री-ख़री बातें सुना देने का क़ायल है। इसके तेवर में ढीलापन नज़र नहीं आता कि वो तमाम नाइंसाफ़ियों और अज़ाबियत के ख़िलाफ़ अपनी तेवरियों पर बल डालकर ललकारने को अव्वलियत देता है। वो ल़फ्ज़ों की तेज़ी से दिमाग़ों को झंझोड़ देने वाला फ़नकार है। उसकी शायरी भी तमाम तेज़-तर्रार सूरतों के बावजूद महज़ ल़फ्ज़ों की घनगरज तक मेहदूद नहीं है बल्कि शोर, न-शोर जैसी कैफ़ियत पैदा करके मुर्दा तबीयतों की अफ़सुर्दगी को किसी हद तक मिटा देने का फ़र्ज़ भी अंजाम देती है। राहत इंदौरी को आज के ब-शऊर इंसान हस्सास शाइर की तरह उन मनक़लब सूरतों का न सिर्फ इरफ़ान है, बल्कि उन सूरतों के तक़रीबी पहलुओं पर उसकी गहरी नज़र भी है जो तवारीख़ी ऐतबार से ग़ैर वाजिबी हक़ाइक़ के नाम पर सच्चाइयों को मसीह करने पर तुली हुई है। इसलिए वो हक़सनाशी के तहत इन मनक़लब सूरतों पर खुलकर तंज़ करता है।

इसी गली में वो भूखा फ़क़ीर रहता था
तलाश कीजे ख़ज़ाना यहीं से निकलेगा

अमीर-ए-शहर तेरी तरह क़ीमती पोशाक
मेरी गली में भिखारी पहन के आते हैं

हमेशा सर पे रही इक चटान रिश्तों की
ये बोझ वो है जिसे उम्र भर उठाया है

हमें दरबार में आने की इजाज़त ही नहीं
हमने एज़ाज़ न ओहदा न मरातिब समझे

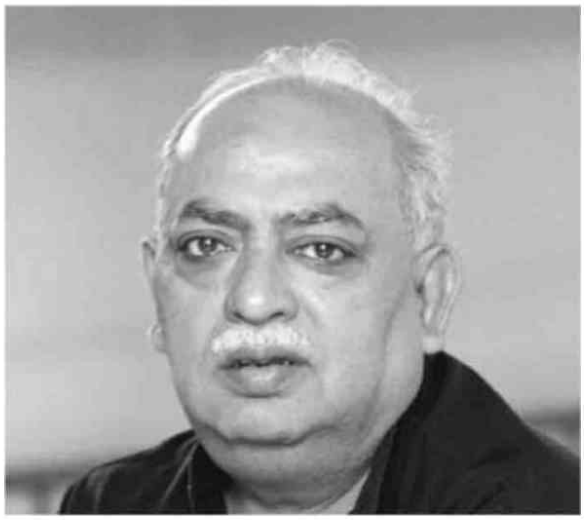
राहत के बारे में एक आम ख़याल ये है कि वो आज के मुशायरों का हीरो है। मुशायरे हीरोशिप के तसव्वुर से ख़ाली नहीं रहे, लेकिन आज के मुशायरों के बारे में जाने क्यों हमारे इल्मी और अदबी हलक़ों में कुछ और क़िस्म की राय क़ायम हो गयी है... ये ख़याल किया जाने लगा है कि मुशायरों में मक़बूल होने वाले बहुत से बशुऊर शोअरा अपनी अदबी और शेरी वक़ार खो बैठे हैं। इसका सबब यह भी बयान किया जाता है कि आमतौर पर अवामी मुशायरों में साहिब-ए-इल्म-ओ-फ़न और शोर-शराबा मचाने वाले या किसी वजह से समाजी, सियासी हैसियत हासिल करने वाले ऐसे सामईन की तादाद ज़्यादा होती है जो शेर की फ़न्नी अ़ज्मत या अदबी वक़ार व मेयार से बिलकुल वाक़िफ़ नहीं होते और जिनकी समूलियत के बाइस हमारे बहुत से बशऊर शोअरा को उनकी सतह तक पहुँचकर अशआर सुनाने पड़ते हैं। ऐसे बहुत से शोअरा की मिसालें हमारे सामने हैं, जिनकी फ़िक्री इस्तेताअत और फ़न्नी सलाहियतों से इंकार नहीं किया जा सकता।

आज भी बेशतर ऐसे शोअरा हैं, जो अवामी मुशायरों में दिल से निकली बात दिल में उतार देने का फ़न जानते हैं। उन शोअरा में राहत इंदौरी का शुमार यक़ीनन होता है। वो उन शोअरा की सफ़ में शामिल हैं, जो अहदे हाज़िर की अजबियत और नाइंसाफ़ियों को पूरे शेअरी आहंग और वक़ार के साथ मुशायरों के स्टेज पर पेश करता है। इसके दिल में इंसानकशी के ख़िलाफ़ आवाज़ व एहतजाज करने की तड़प है, इसके दिमाग़ में इक्तेदार के नशे में बहककर हक़तलफ़ी करने वालों के ख़िलाफ़ क़ुव्वत-ए-बग़ावत मौजूद है। इसकी नज़र में समाजी न-बराबरी के मंज़र मौजूद हैं और इनके ख़िलाफ़ शोला-फ़सानी का ज़ज्बा भी है इसलिए वो बड़ी बलंद आहंगी के साथ अपनी ग़ज़लें मुशायरों में पढ़ता है और उनमें मौजूद सामईन को दावत-ए-फ़िक्र देता है। वो तआस्सुब का मुख़ालिफ़ है, चाहे वो किसी भी तबक़े की तरफ़ से हो या किसी भी झूठी मज़हबी रिवायतों की पासदारी करने वाले न-समझ इंसानों की तरह से फ़ैलाया गया हो। राहत एक इंसान, दोस्त, फ़नकार की तरह अपनी आवाज़ को मुशायरों को बुलंद करके इन लोगों को चौंकाता है।

जो कमफ़हम ज़ज्बाती इंसानों को बहमी तसादुम के लिए बहकाते हैं, इसलिए राहत और उसी फ़िक्र आहंग के शोअरा के लिए कह दिया जाता है कि वो मुशायरों के स्टेज को मुतास्सिर बना रहे हैं। हक़तलफ़ी करने वाले ज़हन के ख़िलाफ़ हस्सास फ़नकार आवाज़े एहतजाज नहीं करे तो वो अपने फ़न से कोताही कर रहा है।

हमारी नौजवान नस्ल ने अपनी ज़ेहनी और क़लबी मुशाएदात को ख़ारजी मसाइल से जिस तरह से मरबूत कर दिया है, इससे ये बात वाजेह हो जाती है कि वो अपने फ़िक्री रवैयों में क़दीम रिवायात पर मुबनी फ़न्नी लवाज़मात को शामिल करने पर हरगिज़ आमादा नहीं है, इसलिए उसने क़दीम असातेज़ा की मज़्बूत अरूज़ी पकड़ में आने के बजाए अपने मुशाहेदाद को तरजीह दी है और यही वजह है कि उसे इस मुशाहेदाद ने फ़ैलकर ख़ारजी मामलात को अपनी गिरफ़्त में जितनी तेज़ी से ले लिया है, शायद उरूज़ी पकड़ और फ़न्नी मुक़ात में उलझकर वो इस तेज़ी को कभी नहीं पा सकती थी, इसका सबूत राहत के यहाँ भी मिल जाता है। इस सिलसिले में एक वाक़ेआ बयान करना चाहूँगा। राहत अपनी शायरी के बिलकुल इब्तिदाई ज़माने में एक ग़लतफ़हमी के तहत एक मक़ामी उस्ताद का शार्गिद हो गया। मगर हैरतअंगेज़ बात ये रही कि वो अपने उस्ताद के रंग-ए-शायरी से बिलकुल मुतास्सिर नहीं हुआ बल्कि उसी ज़माने में उसने जिस नए शेअरी आहंग को इख़्तियार किया था, उससे मुतास्सिर होकर एक अच्छे-ख़ासे क्लासिकी ग़ज़ल कहने वाले उस्ताद ने जदीद बनने की कोशिश की। उसकी तरह इशारे करने से मेरा मक़सद ये है कि राहत ने इंदौर जैसी जगह पर जहाँ क़तई तौर पर क़दीम लब-ओ-लहजे की ग़ज़ल कही जा रही थी, अपने लिए एक नया रास्ता बनाया। उसके साथ कुछ और लोग भी चले। कुछ थक गये और कुछ अब भी ताज़ादम हैं और मैं समझता हूँ कि उन ज़राइत दाना का सेहरा इस ख़त में सबसे पहले राहत ही के सर बांधा जाएगा।

- प्रोफ़ेसर अज़ीज़ इंदौरी



राहत इन्दौरी शोहरत और इ़ज्ज़त के उस मुक़ाम पर खड़े हैं, जहाँ से तनक़ीद सिर झुकाकर या तेज़ क़दम होकर गुज़र जाती है। राहत को जो कुछ भी हासिल है, उसमें उनकी मेहनत और नेकियाँ शामिल हैं। उनके होठों की मुस्कराहट से अभी तक लड़कपन की ख़ुशबू आती है, उनकी ग़ुफ्तगू में अभी तक लाबालिन नौजवान ज़िन्दा है। उनकी आँखों में अभी तक सच बोलते हुए बच्चों की बेनियाज़ी शामिल है। उनके पसीने से अभी तक मशक़्क़त की कमाई की ख़ुशबू आती है। उनके हाथों में अभी तक वो कच्चे पक्के रंग लगे हुए हैं, जो लड़कपन में होर्डिंग्स पेन्ट करते हुए उनकी हथेलियों से फिसल गये थे। उनकी आँखों में अभी तक वो थकन है, जिसे ग़ुरबत और बेरोज़गारी की निशानी कहा जाता है। उनकी आँखों में उन कच्ची नींदों का रस अभी तक मौजूद है, जो रोटी के लिए औरत को बाज़ार और शायर को मुशायरे में ले आता है। उनकी सियाह रंगत में उस धूल और अंजन के कोयले का धुआँ भी शामिल है, जो मुस्तक़बिल की तलाश में भटकने वाले चेहरों का नूर होता है। लेकिन मुझे कहने दीजिए; जिस तरह अय्याश आदमी को तवायफ़ के जिस्म की ख़राशें नहीं दिखाई देती हैं, उसी तरह नक़्क़ादों को शायर की बरतरी का अंदाज़ा नहीं होता है। इजाज़त हो तो मुझे ये भी कह लेने दीजिए कि हमारे अहद में उर्दू तनक़ीद नूराकुश्ती होकर रह गयी है।

हमारे अहद की दीवार से उतरती उर्दू ज़बान की धूप पर तनक़ीद की निगाहें क्यों नहीं पड़ती हैं? उन्हें क्यों नहीं नज़र नहीं आता कि बर्रेसग़ीर की मुमताज ज़बान के क़ब्ज़े में कुछ मोहल्ले रह गये हैं। काश! तनक़ीद का क़लम तलवार बन जाए और उर्दू की बक़ा के लिए मैदाने अमल में कूद पड़े; क्योंकि एकेडमी के कोठों, हवाई जहाज़ की नशिस्तों और दिल्ली की तरफ मुँह करके इबादत करने से बहुत जल्द वो ज़माना भी आ सकता है, जब उर्दू के लिए भी कहा जाने लगेगा- पढ़ें उर्दू और बेचें तेल। बुरा मानने की बात नहीं है; किसी ज़माने में फारसी के लिए भी ये जुमला निकालने वाले का सर क़लम हो सकता था। मेरे इन आड़े-तिरछे जुमलों से कुछ लोग नाराज़ होंगे, कुछ मायूसी का शिकार होंगे और कुछ इस तहरीर को दीवाने की बड़ कहेंगे... चलिए मुझे सब तस्लीम है,

लेकिन आप अब मेरी जगह खड़े होकर सोचिए कि यही तनक़ीदनिगार हज़रात, राहत को मुशायरों का शायर कहकर नज़रअंदाज़ करते हैं तो कैसा लगता है।

ज़िन्दगी के मसाइल, घर की मुहज़ोर ज़रूरतें, एहबाब की बेरुख़ी, रिश्तों की टूट-फूट, देहात की उजड़ी दोपहरें, शहर की क़र्फ्यूज़दा रातें, सियासी बे-एतदाली, फ़िरक़ापरस्ती की गरम हवा, नुमाइश की तरह सजे हुए मज़हबी रहनुमा और इन मज़हबी रहनुमाओं के मुँह से निकलने वाले भोंड़े नारों पर शायरी के हवाले से ज़िन्दा तनक़ीद करने को अगर मुशायरे की शायरी कहा जाता है तो मैं इस शायरी को सलाम करता हूँ और मुबारकबाद देता हूँ यार! तू और तेरे जैसे और भी कई जाँनिसारान-ए-अदब शहीद और ग़ाज़ी भी कहलाएँगे।

इनकी नज़रअंदाज़ी से राहत नज़रअंदाज़ नहीं हो रहे हैं, वो उन सब नज़रों तक पहुँच गये हैं, जहाँ उर्दू समायी हुई है और जिनका काम तनक़ीद करना है वो उन्हें मुबारक और राहत का जो काम है, उसके लिए मुबारकबाद। जहाँ वो हैं, वहाँ अब किसी आवाज़ की कोई अहमीयत नहीं है और उन्होंने ख़ुद को साबित करके दिखाया है। जब कोई साबित कर देता है, तो फिर क़ुबूल करना ही रास्ता रह जाता है। राहत पर तनक़ीद के कितने ही कंकर फेंके जाएँ, पर अब इनसे कुछ नहीं होना है और जैसे ही कंकर राहत की तरफ़ उछलते हैं, गारा बनकर ज़मीन से मिलते हैं।

- मुनव्वर राना



बेतिया से मुशायरा पढ़कर हम गोण्डा पहुँचे; यहाँ से रेल का सफ़र शुरू होना था। रेल वक़्त पर नहीं थी और जब भी रेल लापरवाही दिखाती, राहत भाई उसका इन्तज़ार टहलकर किया करते हैं। टहल रहे थे और कुछ देर बाद मेरे पास आये, बोले- आ तुझे मैं कुछ दिखाता हूँ। कुछ दूर जाने के बाद उन्होंने उँगली एक ख़ातून की तरफ़ की, जो मज़लूम दिख रही थी। हाथ में कासा था और स्टेशन के उन भिखारियों में शामिल थी, जिनका पेट मुसाफ़िर भरते हैं। राहत भाई कहने लगे- इस औरत में मुझे मेरी माँ नज़र आ रही है। इसके बाद उन्होंने जेब में हाथ डाला और वो लिफ़ाफ़ा मेरे हाथ में रख दिया, जो बेतिया में मिला था और उन्हें नहीं पता था इसमें कितनी रक़म है। कहने लगे जा दे दे। मैंने उनसे कहा आपको पता है इसमें क्या है और फिर ये इसकी हिफ़ाज़त कैसे करेगी; कोई भी छीन लेगा। उन्होंने ग़ुस्से में मुझसे कहा- मैं जो कह रहा हूँ वो कर। मैं लिफ़ाफ़ा लेकर ख़ातून के पास पहुँचा। मेरा दिल नहीं माना, मैंने उसे हाथ में देने के बजाय उसकी पोटली में रख दिया। वो हैरत से देख रही थी और उसके चेहरे पर चमक थी। जैसे ही मेरी नज़र उसके

चेहरे से राहत भाई के चेहरे पर गयी, आँसुओं से गिला हो चुका था। उनकी ज़ुबान पर बस यही ल़फ्ज़ थे, मेरी माँ जैसी लग रही है। उसके बाद मुझे नहीं पता, कब मेरी आँखें गीली हो गयीं.. लेकिन पता चला कि राहत भाई अपनी माँ से कितनी मोहब्बत करते हैं।

- अल्ताफ ज़िया शायर, मालेगाँव

Mark as Finished